गो–पालन

आजीविका का उत्तम साधन

लेखक
डा. रवीन्द्र भक्त
डा. चन्द्रशेखर प्रसाद सिंह

लेखक परिचय

डा. रवीन्द्र भक्त का जन्म पटना जिला के दतियाना नामक ग्राम में 9 मार्च 1947 को एक साधारण किसान परिवार में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गांव के ही प्राथमिक विद्यालय में और उच्चतर माध्यमिक तक की शिक्षा पार्वती उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय, विक्रम (पटना) में हुई। फिर बी.एन. कॉलेज, पटना से बी.एस.सी., पार्ट-I करने के बाद सन, 1966 में इनका नामाँकन बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना में पंचवर्षीय पशु चिकित्सा एवं पशु पालन के स्नात्तक पाठ्यक्रम में हो गया। पारिवारिक आर्थिक संकट से संघर्ष करते हुए एवं मेधा छात्रवृति के सहारे पशु चिकित्सा एवं पशु पालन के स्नातक पाठ्यक्रम के अन्तिम वर्ष की परीक्षा उन्होंने सन् 1971 में पास किया। सौभाग्य से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा जुनियर फेलोसीप (Junior fellowship) प्राप्त होने पर पशु पोषण विज्ञान से इन्होंने एम.भी.एस.सी. की परीक्षा सन् 1976 में पास किया। इसी वर्ष इनकी नियुक्ति बिहार सरकार के पशु पालन विभाग में भ्रमणशील पशु चिकित्सा पदाधिकारी, छीपादोहर के पद पर हो गई। तीन वर्षों तक इस पद पर अपनी सेवा प्रदान करने के बाद इनकी प्रतिनियुक्ति लघु, पशु, स्वास्थ्य एवं उत्पादन संस्थान कांके, रांची में हुई। तत्पश्चात् जुलाई 1982 में इनकी नियुक्ति बिरसा कृषि विश्वविद्यालय के रांची पशु चिकित्सा महाविद्यालय में सहायक प्राध्यापक सह कनीय वैज्ञानिक के पद पर हुई। इसी पद पर कार्य करते हुए इन्होंने 1993 में पशु पोषण विज्ञान में डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की। इसके लिए इन्हें भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा वरीय छात्रवृति (Senior fellowship) भी प्रस्तुत की गई थी। फिर समयानुसार इनकी प्रोन्नति सह प्राध्यापक और विश्वविद्यालय प्राध्यापक के पद पर हुई। अपने अध्ययन काल में इन्होंने अनेक शोध पत्र एवं पशुपालक बन्धुओं के लाभ के लिए अनेक लोकप्रिय लेख प्रकाशित किए। किसान भाईयों के फायदा के लिए पशु पालन विषयों पर इनकी वार्ता हमेशा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर प्रसारित होते रहें। जनवरी 2009 में ये विश्वविद्यालय प्राध्यापक के पद से सेवा निवृत हुए।

गो-पालन

आजीविका का उत्तम साधन

लेखक

डा० रवीन्द्र भक्त

डा० चन्द्रशेखर प्रसाद सिंह

- **गो-पालन**

- लेखक : डा. रवीन्द्र भक्त
  डा. चन्द्रशेखर प्रसाद सिंह

- © बदलाव इंस्टीच्यूट ऑफ ट्रेनिंग एण्ड मैनेजमेंट

- प्रकाशन : जनवरी 2019

- सहयोग राशि – 100 रुपये

- प्रकाशक

बदलाव इंस्टीच्यूट ऑफ ट्रेनिंग एण्ड मैनेजमेंट
लोकनायक पथ, अरसण्डे, कांके, रांची, झारखंड
फोन नः 916204948549 / 9199059672
E-mail- bitm.ranchi@rediffmail.com, Website:bitm.net.in

मुद्रक :

अनुक्रम

विषय	पृष्ठ संख्या
● भूमिका	3–5
● गो–पालन की तैयारी	6–13
● गव्य पशुओं का चुनाव	14–30
● पशुओं का प्रजनन	31–33
● नवजात बाछा–बाछी का पालन–पोषण	33–42
● गर्भवती एवं दूधारू गायों का पालन–पोषण	43–47
● दूधारू गायों के रख–रखाव में विशेष सावधानियां	48–51
● रोगोपचार	52–79
● परिशिष्ट–1	80
● परिशिष्ट–2	81

समर्पण

प्रेरणा श्रोत अपने पूज्य पिता स्व. पुनीत भक्त जिनकी जीविका कृषि एवं पशु पालन ही थी की स्मृति तथा उन हजारों कृषक बन्धु जिनकी जीविका पशुपालन पर निर्भर है, को समर्पित है यह पुस्तक।

रवीन्द्र भक्त

भूमिका

दूध और दूध से बने पदार्थों में ऊर्जा, प्रोटीन, विभिन्न खनिज लवण एवं विटामिन उचित अनुपात में विद्यमान रहते हैं। जितने पोषक तत्व दूध से प्राप्त होते हैं उतने अन्य किसी एक खाद्य पदार्थ से प्राप्त नहीं होते। इसलिए दूध एक सर्वोत्तम एवं संतुलित खाद्य पदार्थ है। दूध उत्पादक जीव एक ऐसे जीवित कारखाने हैं जो कृषि से उत्पन्न उपजातिय पदार्थों को खाकर मनुष्य के लिए उत्तम कोटि के खाद्य पदार्थ उत्पन्न करते हैं। साथ ही साथ गाय का गोबर एक उत्तम कोटि का उर्वरक है। यही कारण है कि भारतीय किसान पशु पालन को कृषि के एक सहयोगी धन्धे के रूप में करते आ रहे हैं। चूंकि हमारे देश की जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई है, प्रत्येक परिवार के पास कृषि योग्य पर्याप्त भूमि नहीं है और सरकार के लिए प्रत्येक नागरिक को रोजगार देना संभव भी नहीं है इसलिए अब तो पशु पालन को वृहद तौर पर एक स्वतंत्र व्यवसाय के रूप में करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है, ताकि परिवार का भरण–पोषण हो सके। दूध उद्योग स्थाई तौर पर सालो भर एक निश्चित आमदनी का श्रोत है। साथ ही साथ, दूध एवं दूध से बने पदार्थों से परिवार के सदस्यों के लिए उत्तम कोटि के खाद्य पदार्थ प्राप्त होते हैं जिससे अन्य खाद्य पदार्थों पर व्यय कम हो जाता है।

उपरोक्त फायदों के साथ–साथ दुधारू पशु पालन में अनेक समस्यायें भी हैं, जो निम्न प्रकार हैं :

1. इसमें अत्यधिक तथा नियमित श्रम की आवश्यकता है। कम से कम प्रतिदिन सुबह–शाम पशुओं को खिलाना, दूध निकालना और गोशाला तथा पशुओं की सफाई अत्यावश्यक है। कभी–कभी नियमित अच्छा कार्यकर्ता मिलना कठिन हो जाता है।

2. गव्य व्यवसाय में आरंभ में तो ज्यादा पूंजी की आवश्यकता होती ही है। पशुओं के खान–पान, चिकित्सा एवं रोग नियंत्रण पर नियमित रूप से व्यय करना पड़ता है। अच्छे बाजार के अभाव में गव्य व्यवसाय में लाभ के बजाय हानि होने लगती है।

3. कभी–कभी पशुओं का गर्भधारण न करने से, गर्भपात हो जाने से, क्षय, थनैल या अन्य संक्रामक बीमारियों से अत्यधिक हानि होती है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि गाय जैसे परमोपयोगी पशु का पालन–पोषण कैसे किया जाय ताकि इससे ज्यादा से ज्यादा लाभ मिल सके। वास्तव में पशु पालन एक जटिल तकनिकी विषय है जिसकी जानकारी नहीं होने से अधिकांश लोग इसमें असफल हो जाते हैं। इसलिए गो–पालन प्रारंभ करने के पूर्व इसकी तकनीक की जानकारी प्राप्त करना अतिआवश्यक है। अच्छा खान–पान, प्रबंधन एवं रोग नियंत्रण से गो–पालन की सारी समस्याओं का समाधान करके काफी लाभप्रद बनाया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक में पशु पालन में आने वाले जटिल तकनीकि समस्याओं के समाधान का प्रयास किया गया है। आशा है, यह पुस्तक पशु–पालक भाईयों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

रवीन्द्र भक्त

अध्याय-1

गो–पालन की तैयारी

गो–पालन की अच्छी शुरूआत तीन बातों पर निर्भर करती है: (1) पूंजी (2) गो–पालन प्रारंभ करने वाले व्यक्ति का अनुभव और (3) दूध और दूध से बने पदार्थो की खपत के लिए अच्छा बाजार। जिस व्यक्ति को गो–पालन में पर्याप्त अनुभव हो लेकिन उसके पास पूंजी की कमी हो तो उसके पास जो भी पशु उपलब्ध हों उन्हीं से व्यवसाय आरंभ कर देना चाहिए और उन्हें अच्छे नस्ल के सांढ़ से गर्भाधान कराकर उनकी उत्पादन क्षमता में बढ़ोत्तरी करना चाहिए। लेकिन जिस व्यक्ति के पास पर्याप्त पूंजी हो उन्हें अत्यधिक दूध उत्पादन करने वाली नस्ल की गायों को खरीदना चाहिए।

गव्य प्रक्षेत्र की स्थापना : एक गव्य प्रक्षेत्र की स्थापना तीन प्रकार के पशुओं से की जा सकती है। (1) दुधारू गाय को खरीदकर (2) गाभिन ओसर को खरीदकर तथा (3) छोटी बाछी को खरीदकर।

(1) सबसे निश्चित और शीघ्र दूध प्राप्त करने के लिए दुधारू गाय को खरीदकर गव्य व्यवसाय आरंभ करना चाहिए। यद्यपि यह सबसे अधिक लाभप्रद विधि है परन्तु इसके लिए अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। गाय खरीदने में यह ध्यान देना चाहिए कि गाय ज्यादा पुरानी न हो। एक गाय 4 से 5 वर्ष तक अत्यधिक उत्पादन की स्थिति में रहती है। 5 से 6 वर्ष की आयु में (दूसरी–तीसरी व्यांत में) सबसे अधिक दूध देती है। यह क्षमता लगभग 10 वर्ष की आयु तक बनी रहती है। आयु के साथ–साथ उसकी उत्पादन क्षमता, नस्ल और स्वास्थ्य पर भी ध्यान देना चाहिए।

(2) गाभिन ओसर खरीदकर गव्य प्रक्षेत्र की स्थापना सबसे लोकप्रिय विधि है। इसमें कम पूंजी लगती है। लेकिन ओसर खरीदने में निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिए: (1) ओसर का आकार उसके आयु के अनुसार हो या बड़ी लगे। (2) उसकी आकृति किसी खास नस्ल का बोध कराये

(3) शारीरिक बनावट अर्द्धनौकाकार हो। (4) चेहरा और गर्दन की लम्बाई सामान्य हो। (5) त्वचा मुलायम तथा लचीला हो। (6) पीठ लम्बी हो (7) पटरी की हड्डी चौड़ी एवं दूर–दूर पर अवस्थित हो। (8) शरीर की समायी पर्याप्त हो। (9) थन के स्थान पर छीमी दूर–दूर पर अवस्थित हो। (10) पैर मजबूत एवं जमीन पर लम्बवत रखे जाते हों और (11) स्वास्थ्य अच्छा हो।

(3) बाछी खरीदकर गव्य प्रक्षेत्र स्थापित करने में सबसे कम पूंजी लगती है। लेकिन बाछी पालने पर काफी व्यय करना पड़ता है। चुंकि एक बाछी ढ़ाई से तीन वर्ष के बाद ही दूध देने की स्थिति में होगी, इसीलिए इसमें विलम्ब से दूध प्राप्त होता है। एक बाछी खरीदने में उन सभी बातों पर ध्यान देना चाहिए जो एक ओसर खरीदने में दिया जाता है।

दस गायों का एक गव्य प्रक्षेत्र प्रारंभ करने के लिए अनुमानित आय–व्यय का व्योरा नीचे दिया जा रहा हैः

आवश्यक जगह :

(क) आच्छादित जगह

– दस गायों के लिए आच्छादित जगह 30 वर्गफीट प्रति गाय की दर से.	300 वर्गफीट
– दस बछड़ों के लिए आच्छादित जगह 20 वर्गफीट प्रति बछड़ा की दर से	200 वर्गफीट
– चार कमरा एक कार्यालय के लिए, एक दाना भंडार, एक विविध सामानों का भडार एवं एक बीमार पशुओं के लिए 15" x 10" x 4"	600 वर्गफीट
– कुल आच्छादित जगह	1100 वर्गफीट

(ख) खुली जगह

– दस गायों के लिए खुली जगह 100 वर्गफीट प्रति गाय की दर से	1000 वर्गफीट।
– दस बछड़ों के लिए खुली जगह 60 वर्गफीट प्रति बछड़ा की दर से	600 वर्गफीट।
– कुल खुली जगह	1600 वर्गफीट
– कुल आवश्यक जमीन	2700 वर्गफीट

अनावर्ती व्यय (रुपया में)

(क) गोशाला निर्माण में

– 1100 वर्गफीट में आच्छादित भवन बनाने में 1300 रु० प्रति वर्गफीट की दर से	1,430,000
– 1100 वर्गफीट फर्श को सेमेन्ट एवं छड़ी से ढलाई करने में 50 रु० प्रति वर्गफीट की दर से	55,000
– 1600 वर्गफीट खुली जगह को ईंट से पाटने के लिए 15 रु० प्रति वर्गफीट की दर से	24,000
– खाने–पीने के लिए नाद के निर्माण के लिए 300 रु० प्रति गाय एवं 150 रु० प्रति बछड़ा की दर से	4,500
– पूरा 2700 वर्गफीट में 6 फीट ऊँचा चहारदीवारी दिलाने के लिए 40 रु० प्रति वर्गफीट की दर से	1,08,000
– आवास निर्माण में कुल व्यय	16,21,500

जिस पशु पालक को अपनी जमीन हो तथा पहले से मकान उपलब्ध हो उन्हें जमीन और मकान पर व्यय नहीं करना पड़ेगा।

(ख) मूल गाय खरीदने में :

दस गायों की कीमत 45,000 प्रति गाय की दर से	4,50,000
चारा काटने की एक मशीन	25,000
विविध सामान जैसे बाल्टी, सिकड़, कुदाल, बेलचा आदि	2,000
कुल अनावर्ती व्यय (16,21,500+4,50,000+25,000+2,000)	20,98,500

आवर्ती व्यय (रुपया में)

- सालो भर समान मात्रा में दूध प्राप्त करने के लिए, दस गायों में पांच एक बार और पांच छः महिना बाद खरीदना चाहिए। यह मान लिया जाये कि प्रत्येक गाय औसतन 15 किलोग्राम दूध प्रतिदिन देती है। एक किलो दाना मिश्रण शरीर रक्षा तथा प्रत्येक 2.5 (ढ़ाई) किलोग्राम दूध पर एक किलोग्राम दूध उत्पादन के लिए दिया जाता है। इस दर से एक गाय को एक दिन में कुल 7 किलोग्राम दाना मिश्रण खिलाया जाएगा। प्रथम पांच महिनों में दूध उत्पादन लगभग समान रहता है। इस प्रकार पांच गायों के लिए पांच महिनों में 5250 किलोग्राम दाना की खपत होगी जिसकी कीमत 2300 रु० प्रति क्विंटल की दर से 120750 रु०
- तीन महिना के बाद पहली खेप की गायों को पाल खा जाना चाहिए। पाल खाने के बाद भी दो महिना तक उनका दूध उत्पादन में कमी नहीं होगीं लेकिन इसके बाद 10 प्रतिशत की दर से अर्थात 1.5 किलोग्राम/प्रतिदिन/प्रति माह की दर से कम होता जायेगा। इस प्रकार छठा, सातवां, आंठवां और नौवें महिने में उसका दूध क्रमश : 13.5, 12, 10.5 और 9 किलोग्राम प्रतिदिन/प्रतिमाह होगा। इस प्रकार छठा, सातवां, आठवां और नौवा महिना में उसे क्रमशः 6.4,5.8,5.2 और 4.6 किलोग्राम दाना मिश्रण प्रतिदिन प्रति गाय देना होगा। इस प्रकार पहली खेप की पांचों गायों के लिए छठा से नौवा महिना तक 33 क्विंटल दाना मिश्रण की आवश्यकता होगी, जिसकी कीमत 2300 रु०/क्विंटल की दर से 75,900 रु०
- दसवा महिना में पहली खेप की गायों का दूध औसतन 7.5 किलोग्राम/गाय/दिन होगा, साथ ही साथ वे सात महिना की गाभिन रहेगी। इस अवस्था में उन्हें दूध उत्पादन एवं शारीरिक रक्षा के अलावा 1 किलोग्राम/गाय/दिन गर्भ में पल रहे बछड़ा के पोषण के लिए खिलाना होगा। इस प्रकार 5 किलोग्राम दाना मिश्रण/गाय/दिन की दर से पांच गायों को दसवां महिना में कुल 7.5 क्विंटल दाना खिलाना होगा जिसकी कीमत 2300 रु० प्रति क्विंटन की दर से 17250 रु०
- दस महिना के बाद पहली खेप की गायें सात महिना की गाभिन रहेगी। अब इनसे दूध लेना बन्द कर देना चाहिए और 1 किलोग्राम दाना मिश्रण

शरीर रक्षा के लिए तथा 1.5 किलोग्राम गर्भ में पल रहे बछड़ा के बढ़ोतरी के लिए खिलाना चाहिए। इस प्रकार ग्यारहवां और बारहवां महिना में 2.5 किलोग्राम/गाय/दिन की दर से 5 गायों को 7.5 क्विंटल दाना की आवश्यकता होगी जिसकी कीमत 2300/क्विंटल की दर से 17,250.00 रु०

- पांच गायों के लिए एक वर्ष में 6 किलोग्राम/गाय/दिन की दर से 109.50 क्विंटल सुखा चारा की आवश्यकता होगी, जिसकी कीमत 500 रु०/क्विंटल की दर से 54,750 रु०
- पांच गायों के लिए एक वर्ष में 10 किलोग्राम/गाय/दिन की दर से 182.50 क्विंटल हरा चारा की कीमत 125 रु० प्रति क्विटंल की दर से 22812 रु०
- दस दिन के बाद बछड़े भी दाना–मिश्रण खाना शुरू कर देते हैं। जैसे–जैसे उनकी आयु बढ़ती जाती है, उनकी खुराक भी बढ़ती जाती है। औसतन 1.5 किलोग्राम दाना–मिश्रण प्रति बछड़ा प्रतिदिन की दर से 5 बछड़े एक वर्ष में 2738 किलोग्राम दाना मिश्रण खायेगें, जिसकी कीमत 23रू प्रति किलोग्राम की दर से 62,974 रु०
- इसी तरह एक बछड़ा एक दिन में 1.5 किलोग्राम सुखा चारा खायेगा। इस प्रकार 5 बछड़े एक वर्ष में 2738 किलोग्राम सुखा चारा खायेगें, जिसकी कीमत 500 रु०/क्विंटल की दर से 13,690 रु०
- एक बछड़ा एक दिन में औसतन 2 किलोग्राम हरा चारा खाएगा। इस प्रकार 5 बछड़े एक वर्ष में 3650 किलोग्राम हरा चारा खायेगें, जिसकी कीमत 125रु०/क्विंटल की दर से 4562 रु०
- छव महिना बाद दूसरी खेप की पांच गायें भी खरीद ली जाएगी। इसलिए प्रथम पांच महिनों में उनके लिए दाना मिश्रण पर व्यय 120750 रु०
- अगला एक महिना में दूसरी खेप की पांच गायें 9.6 क्विंटल दाना मिश्रण खाएगी जिसकी कीमत 2,300रु०/क्विंटल की दर से 22,080 रु०
- दूसरी खेप की 5 गायों द्वारा 6 महिनों में 6 किलोग्राम/गाय/दिन की दर से 54 क्विंटल सुखा चारा तथा 10 किलोग्राम/गाय/दिन की दर से

90 क्विंटल हरा चारा खायेंगी। जिनकी कीमत क्रमशः 500 रु०/क्विंटल और 125रु०/क्विंटल की दर से कुल 38,250 रु०

– दूसरी खेप के पांच बछड़ों द्वारा 6 महिना में 1.5 किलोग्राम/बछड़ा/दिन की दर से 1350 किलोग्राम दाना मिश्रण, 1.5 किलोग्राम/बछड़ा/दिन की दर से 1350 किलोग्राम सुखाचारा तथा 2 किलोग्राम/बछड़ा/दिन की दर से 1800 किलोग्राम हरा चारा खाया जाएगा जिनकी कीमत क्रमशः 2300, 500, और 125रु० प्रति क्विंटल की दर से कुल 40,050 रु०

– इस प्रकार दाना एवं चारा पर एक वर्ष में कुल अनुमानित व्यय 6,08,068 रु०

– एक वर्ष में दवा पर अनुमानित व्यय 10,000 रु०

– दो कामगार के वेतन पर 8000रु० प्रति व्यक्ति/माह की दर 192,000 रु०

– विविध खर्च 1000रु०/माह की दर से एक वर्ष में 12000 रु०

– गायों पर बीमा कराने पर खर्च 5 प्रतिशत की दर से 2,075 रु०

(क) योग 834143 रु०

- **अवमूलन**

– भवन एवं अन्य स्थाई संरचना के मूल्य में ह्रास 5 प्रतिशत की दर से 81,075 रु०

– वर्ष के आरंभ में खरीदे गये उपकरण के मूल्य में ह्रास 5 प्रतिशत की दर से 2,250 रु०

– वर्ष के अन्त तक गायों के मूल्य में ह्रास 10 प्रतिशत की दर सं 42,000 रु०

(ख) योग 125325 रु०

- **कुल आवर्ती लागत** **(क)+(ख) 9,59,468 रु०**

प्रथम वर्ष की आय

1. दूध द्वारा : निम्नलिखित तालिका से प्रथम वर्ष में दूध उत्पादन की मात्रा दर्शाया गया है। (किलोग्राम में)

महिना	पहली खेप की गायों द्वारा	दूसरी खेप की गायों द्वारा	योग
पहले पांच महिनों में	75 x 150	–	11250
छठा महिना में	67.5 x 30	–	2025
सातवां महिना में	60 x 30	75 x 30	4050
आठवां महिना में	52.5 x 30	75 x 30	3825
नौवां महिना में	45 x 30	75 x 30	3600
दसवां महिना में	37.5 x 30	75 x 30	3375
ग्यारहवां महिना में	–	75 x 30	2250
बारहवां महिना में	–	67.5 x 30	2025
प्रथम वर्ष में कुल दूध उत्पादन	**32400 कि.ग्राम**		

जन्म से 21 दिनों तक शारीरिक भार का 1/10वां, 22 से 35 दिन तक 1/15वां और 35 से 60 दिन तक 1/20वां भाग की दर से पहली और दूसरी खेप के बछड़ों को पिलाये गये दूध की मात्रा 1358 कि.ग्राम

- वास्तव में प्राप्त दूध — 31042 कि. ग्रा.
- दूध से प्राप्त आय 40 रु०/कि0 ग्राम की दर से — 12,41,680 रु०
- पहली खेप से प्राप्त 2 बाछा और दूसरी खेप के तीन बाछा के रूप में प्राप्त आय क्रमशः 5000 एवं 2500रु० की दर से — 17,500 रु०
- पहली खेप से 3 बाछी एवं दूसरी खेप से 2 बाछी के रूप में प्राप्त आय क्रमशः 15000 एवं 7500रु० की दर से — 60,000 रु०
- तेरह ट्रक के लगभग उत्पादित कम्पोस्ट की बिक्री से प्राप्त आय 4000रु० प्रति ट्रक की दर से — 52,000रु०
- वर्ष के अन्त में प्राप्त कुल आय — 13,71,180रु०
- वर्ष के अन्त तक प्राप्त कुल लाभ — 13,71,180–9,59,468 = 4,11,712 रु०

❑

अध्याय - 2

गव्य पशुओं का चुनाव

एक अच्छे दुधारू पशु का चुनाव करने के लिए चार बातों पर ध्यान देना आवश्यक हैः 1. नस्ल एवं आकृति 2. वंशावली 3. उत्पादन क्षमता और 4. स्वास्थ्य।

1. नस्ल : दूध उत्पादन के लिए पाले जाने वाले पशु का चयन दूध उत्पादन का उदेश्य, स्थानीय बाजार एवं उस स्थान की भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करता है। भारत में गायों की जितनी नस्लें पाई जाती हैं उन्हें उत्पादन एवं काम के आधार पर तीन वर्गों में बांटा गया है। (1) दुधारू नस्ल (2) दुकाजी नस्ल और (3) कामगार नस्ल।

1. दुधारू नस्ल : पूरे देश में गाय की अनेक नस्लें पाई जाती हैं परन्तु उनमें सिर्फ चार नस्लों को ही दुधारू नस्ल की मान्यता है। ये हैः साहीवाल, लाल सिन्धी, गीर और देवनी।

साहीवाल : यह भारत की सबसे अच्छी दुधारू नस्ल मानी जाती है। इस नस्ल का मूल उद्गम स्थान पंजाब प्रांत है। इस नस्ल के पशुओं का शरीर गहरा, त्वचा ढीली, नाभि लटकी हुई, छोटे–छोटे पैर, मुठिया छोटे सींग तथा ललाट चौड़ा होता है। इनका रंग हल्का लाल या पीला लाल या गहरा भूरा पर विभिन्न आकृति के उजले धब्बे होते हैं। गर्दन के नीचे लटका हुआ माँसल गलकम्बल (डीउलैप) तथा कंधों के उपर उभरा हुआ माँसल कूबड (हम्प) होता है। पूंछ लम्बा जिसके अन्त में काले रंग के केशों का गुच्छा रहता है। इस नस्ल की गायें सीधी तथा नर पशु सुस्त और भारी काम करने में असमर्थ होते हैं। समुचित खान–पान एवं रख–रखाव पर इस नस्ल की गायें प्रतिदिन औसतन 10 किलोग्राम दूध देती हैं।

लाल सिन्धी : इस नस्ल की गायों का मूल उद्गम स्थल सिन्ध प्रांत है जो

अब पाकिस्तान का हिस्सा है। इस नस्ल के पशु अत्यन्त सीधे होते हैं। इनका शरीर गठिला एवं आकार मध्यम होता है। इनके सींग सिर से बाहर निकलकर, फिर अन्दर की ओर मुड़कर नुकीला हो जाते हैं। इस नस्ल के पशुओं का रंग लाल या हल्का पीला या गहरा भूरा होता है। नर पशु मादा की अपेक्षा ज्यादा गहरे लाल रंग के होते हैं। गायों के थन बड़े आकार के होते हैं जो ज्यादा दूध देने वालों में नीचे लटक जाते हैं। समुचित खान–पान एवं रख–रखाव पर इस नस्ल की गायें औसतन 5–10 किलोग्राम प्रतिदिन दूध देती हैं। नर पशु भी गाड़ी खिचने एवं हल चलाने में सुस्त होते हैं। इनकी चाल मन्द होती है।

गीर : गीर नस्ल की गायों का मूल उदगम स्थान गुजरात राज्य के जूनागढ़ जिला माना जाता है। यहीं से इस नस्ल की गायें आस–पास के इलाके में फैल गई। इस नस्ल की पशुओं का सीधा पीठ, गठिला शरीर, मोहक आकृति, गर्वीली चाल एवं सरल स्वभाव होता है। लम्बे कान नीचे झुके रहते हैं। सिर लम्बा तथा ललाट उभरा रहता है। पूंछ लम्बी तथा उसके अन्त में काले रंग के केशों का गुच्छा रहता है। सींग पीछे की ओर झुककर विशेष आकृति में मुड़े रहते हैं। इनका रंग लगभग लाल से लगभग काला या विभिन्न रंगों के धब्बे वाला होता है। सिर पर काले रंग के बाल रहते हैं। इस नस्ल की गायें औसतन 8–10 किलोग्राम प्रतिदिन दूध देती हैं। इस नस्ल की गायों का ब्राजील से निर्यात हुआ। वहां पर प्रजनन की आधुनिक विधियों द्वारा इनकी उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है। इनके दूध में ए–2 प्रकार का केजिन उपस्थित रहता है। इस प्रकार का केजिन रोग निरोधक होता है। इस कारण इनकी दूध की कीमत विदेश से आयातित संकर नस्ल की गायों से अधिक रहती है।

देवनी : इस नस्ल के पशुओं का मूल स्थान हैदराबाद के उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्र है। इनकी आकृति गीर नस्ल के पशुओं से मिलती–जुलती है लेकिन इनके ललाट के आँख के सामने वाला भाग उभरा रहता है जबकि गीर का आँख के उपर वाला भाग उभरा रहता है। सींग बाहर निकल कर पीछे की ओर झुके रहते हैं परन्तु मुड़े हुए नहीं रहते। शरीर गठिला और चेहरा पतला होता है। इस नस्ल के पशुओं का रंग काला, उजला, लाल या इन रंगों के अनियमित धब्बे रहते हैं। गर्दन के नीचे माँसल गलकम्बल (डीउलैंप) लटकते रहते हैं। कंधा के उपर माँसल खड़ा कूबड (हम्प) होता है। इस नस्ल की गायों का औसत उत्पादन 6–10 किलोग्राम प्रतिदिन है। नर पशु कठिन काम करने में सक्षम होते हैं।

2. दुकाजी नस्लें

गाय की ऐसी नस्लें जिनके मादा संतोषजनक दूध देती हैं तथा नर काम करने में सक्षम होते हैं, दुकाजी नस्लें कहलाती हैं। इसमें हरियाणा, थारपारकर, ओंगोल और कंकरेज प्रमुख हैं।

हरियाणा : इस नस्ल की गायों का मूल स्थान वर्तमान हरियाणा राज्य, दिल्ली, पूर्वी राजस्थान तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश है। इनका शरीर कसा हुआ सुढ़ौल होता है। सभी अंग समान अनुपात में विकसित होते हैं। चमड़ा शरीर से सटा रहता है। सींग छोटे–छोटे होते हैं। ललाट चौड़ा तथा चेहरा लम्बा और पतला होता है। कान छोटे होते हैं। नाभि शरीर से सटा रहता है। थन सामान्य आकार का होता है जिस पर दूध की पतली शिरायें उभरी रहती हैं। पैर लम्बे और पतले होते हैं। पूंछ छोटी होती है, जिसके अन्त में काले रंग के केशों का गुच्छा रहता है जो नीचे आकर चुकीला हो जाता है। इस नस्ल के पशुओं का रंग दुधिया सफेद होता है। गायें औसतन 5 से 6 किलोग्राम प्रतिदिन दूध देती है तथा बैल हल जोतने और भार ढुलाई के लिए अच्छे होते हैं। इस नस्ल के पशु काफी चंचल और चौंकन्ने होते हैं। हल तथा बैलगाड़ी खींचने में ये पशु काफी फूर्तीले होते हैं।

थारपारकर : इस नस्ल की गायों का मूल उद्‌भव स्थल पाकिस्तान का सिंध प्रान्त तथा उसकी सीमा से सटे राजस्थान का जोधपुर और जैसलमेर क्षेत्र है। इस नस्ल के पशु मध्यम आकार के होते हैं। इनका शरीर सुढ़ौल, भरा हुआ गहरा होता है। पैर मजबूत होते हैं। ललाट अन्य नस्लों की अपेक्षा चौड़ा होता है। गलकम्बल (डिउलैप) माँसल होता है। सींग मोटा और मध्यम लम्बाई के होते हैं। पूँछ लम्बा होता है जिसके अन्त में काले रंग के केशों का गुच्छा होता है। इस नस्ल की गायें 4 से 8 किलोग्राम तक प्रतिदिन दूध देती है। बैल ढुलाई एवं जुताई के लिए अच्छे होते हैं।

ओंगोल : इस नस्ल का मूल अद्‌भव स्थल आंध्र प्रदेश का ओंगोल क्षेत्र है जिसमें नेल्लूर और गुन्टुर जिले आते हैं। इस नस्ल के पशु विशालकाय तथा उभरी हुई माँसपेशियों वाले होते हैं। इनका ललाट चौड़ा होता है। सींग छोटा, चिकना एवं आधार पर मोटे होते हैं। कुबड़ या मउड़ (हम्प) बड़ा और सीधा खड़ा होता है। इस नस्ल के पशु चुस्त लेकिन सरल स्वभाव के होते हैं। इनका रंग उजला होता है। नर पशु के पैर भूरे रंग के हो सकते हैं। इस

नस्ल के बैल ताकतवर होते हैं इसलिए ढुलाई के काम के लिए अच्छे होते हैं। गायें औसतन 3 से 5 किलोग्राम प्रतिदिन दूध देती हैं।

कांकरेज : इस नस्ल का मूल उद्भव स्थल सींग और अहमदाबाद के बीच का क्षेत्र है। गाय की सभी नस्लों में यह भारी नस्ल है। इस नस्ल के पशुओं की छाती चौड़ी होती है। ललाट के मध्य में हल्का गड्ढ़ा रहता है। सींग मजबूत और मुड़े हुए होते हैं; जिन पर कुछ दूरी तक चमड़ा चढ़ा रहता है जो इनकी मुख्य पहचान है। कूबड़ या मऊड़ (हम्प) काफी विकसित रहता है। नर पशुओं का रंग चांदी की तरह सफेद या हल्का काला से गहरा काला होता है। मादाओं के रंग हल्के होते हैं। इस नस्ल के पशु लम्बे–लम्बे डग भर कर चलते हैं इसलिए इसे सबाई (सवा गुनी) चाल कहते हैं। पूंछ कुछ लम्बी होती है जिसके अन्त में काले रंग के केशों का गुच्छा रहता है। इस नस्ल के नर पशु ढुलाई कार्य के लिए उपयुक्त होते हैं। गायें औसतन 5 से 10 किलोग्राम प्रतिदिन दूध देती हैं।

भारतीय गो नस्लों की उत्पादन क्षमता में वृद्धिकरण : विदेशी नस्ल के पशुओं के जींस में दूध उत्पादन क्षमता अधिक होती है तथा अधिकांश भारतीय गो नस्लों की दूध उत्पादन क्षमता पाश्चात् नस्लों की तुलना में बहुत कम है। लेकिन रोग निरोधक क्षमता और विपरित परिस्थिति में अनुकूलीकरण की शक्ति विदेशी पशुओं की अपेक्षा अधिक होती है। उसमें बढ़ोतरी के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले से ही चलाये जा रहे हैं। 1928 ई0 में राजकीय कृषि आयोग की स्थापना की गई। इस आयोग की अनुशंसा के आधार पर अच्छे गो नस्लों को संरक्षित रखते हुए उनके सांढ़ से अन्य नस्लों की गायों को गर्भाधान कराने की योजना चलाई गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कुंजी ग्राम केन्द्र (Key Village Center) चलाई गई। इस योजना के अनुसार प्रत्येक 5000 से 10000 गाय या भैंस की आबादी पर एक कुंजी ग्राम केन्द्र (Key Village Centre) की स्थापना की गई जहाँ अच्छे नस्ल के सांढ़ रखे जाते थे। प्रथम् दशक के प्रारंभ में, ऊँचे पर्वतीय क्षेत्र के गायों को आस्ट्रेलिया और संयुक्त राज्य अमेरिका से आयात किए जर्सी नस्ल के सांढ़ से गर्भाधान कराने की अनुशंसा की गई। यह योजना काफी सफल रही। जर्सी से स्थानीय नस्ल की गायों को संकरण कराने से उत्पन्न गायों की उत्पादन क्षमता काफी बढ़ गई। इससे प्रोत्साहित होकर 1961 से 1970 तक लगभग 7500 विदेशी नस्ल के

सांढ़, भारतीय नस्ल के गायों को, गर्भाधान कराने के लिए आयात किया गया। जिन विदेशी नस्ल के साढ़ों को आयात किया गया वे हैं होल्सटीन–फ्रीजियन, जर्सी ब्राउन स्वीस, आयरशायर और गर्नेसी। इनमें कुछ विदेशी नस्लों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है :

होल्सटीन- फ्रीजियन : इस नस्ल की गायों का मूल उत्पति स्थान हौलैन्ड है। इस नस्ल की गायें शान्त और सीधी होती हैं। इनका रंग काला और उजला होता है। शरीर पर काला और उजला क्षेत्र विभिन्न गायों में भिन्न आकार के होते हैं लेकिन आधा पूंछ और गुच्छा सभी गायों में उजला ही होता है। अधिकांश गायों के चारो पैर के घुटनों से नीचे का भाग भी उजला होता है। सिर लम्बा, पतला और सीधा होता है। इस नस्ल की गायों का शरीर समतल नहीं होता, उसपर अनेक गड्ढ़े और उभार होते हैं। थन काफी बड़ा होता है। थन पर के नस (मिल्क भेन) पूर्ण विकसित और घुमावदार होते हैं। सींग बगल से निकलकर आगे की और मुड़ जाते हैं। इस नस्ल की गायें प्रतिव्यांत औसतन 10,000 से 15,000 किलोग्राम दूध देती हैं। दूध में चर्बी की मात्रा 2.5 से 4.3 प्रतिशत पाया जाता है।

जर्सी : इंगलिश चैनेल में जर्सी नामक एक द्वीप है। इसी द्वीप से इस नस्ल की गायों का विकास हुआ। इस नस्ल की गायें सीधी–सादी और डरने वाली होती हैं परन्तु अच्छा प्रबंधन से आसानी से पाली जा सकती हैं। इस नस्ल की गायों का रंग हल्का बादामी से काला होता है जिसपर उजला या अन्य रंगों का गाढ़ा धब्बा होता है। जीभ और पूंछ का गुच्छा काला या उजला हो सकता है। थुथना काला होता है जो किसी अन्य फीका रंग से घिरा रहता है। इस नस्ल के पशुओं का सींग गर्नेसी की तरह सिर से निकलकर आगे की ओर मुड़ जाते हैं। गाय की दुधारू नस्लों में जर्सी का आकार सबसे छोटा होता है। गायों का वजन 350 से 550 किलोग्राम तथा सांढ़ों का वजन 550 से 700 किलोग्राम के बीच होता है। इस नस्ल के पशुओं में चरने की क्षमता अत्यधिक होती है। छोटी कद के कारण इसको शरीर पोषण के लिए ज्यादा खाद्य पदार्थों की आवश्यकता नहीं होती। इस नस्ल की गायें 300 दिनों की एक व्यांत में 8000 से 9000 किलोग्राम दूध देती हैं। दूध में 5–6 प्रतिशत तक वसा पाया जाता है। दूध का रंग हल्का पीला होता है। विकसित देशों में दूध उत्पादन में वृद्धि के लिए जर्सी एवं होल्सटीन–फ्रीजियन गायों का उपयोग ज्यादा किया जाता है।

ब्राउन स्वीस : स्वीटजरलैन्ड के पर्वतीय क्षेत्र से इस नस्ल की उत्पति हुई है। दुधारू गायों में इस नस्ल का आकार सबसे बड़ा और शरीर सबसे अधिक असमतल होता है। इस नस्ल की गायें शांत, सीधी और आसानी से पोस मान लेती है। इनका रंग हल्का बादामी से गहरा काला होता है। थुथना का रंग फीका होता है। रीढ़ के उपर हल्की रंग की धारी रहती है। नाक, जीभ, पुंछ का गुच्छा और सींग की चोटी काले होते हैं। चुंकि ब्राउन–स्वीस गायें आकार में बड़ी होती हैं, इसलिए इनके शरीर की हड्डियां आकार में बडे होते हैं। सिर भी लम्बा और अक्सर तस्तरीनुमा रहता है। एक व्यांत में इस नस्ल की गायें औसतन 5,500 किलोग्राम दूध देती है जिसमें लगभग 4 प्रतिशत वसा रहता है।

आयरशायर : यह सबसे अच्छी गव्य नस्ल मानी जाती है। इस नस्ल की गायों का मूल उद्गम स्थल स्कॉटलैण्ड है। ये गायें काफी फूर्तिली होती हैं बिगड़ जाने पर इन्हें पालना कठिन है। इस नस्ल की गायों का रंग फीका से गाढ़ा लाल रंग का होता है जिसपर उजले रंग के धब्बे होते हैं या उजले रंग पर लाल धब्बे होते हैं। सींग लम्बे होते हैं जो उपर निकलकर चोटी पर पतला होते हुए थोड़ा पीछे की ओर मुड़ जाते हैं। दूसरे गव्य नस्लों की अपेक्षा आयरशायर की गर्दन छोटी और मोटी होती है। 300 दिनों की व्यांत में ये गाये औसतन 5,000 किलोग्राम दूध देती है जिसमें 4 प्रतिशत वसा की मात्रा रहती है।

गर्नेसी : फ्रांस के पास गर्नेसी नामक एक टापू है। यही टापू इस नस्ल की गायों का उद्गम स्थल है। इस नस्ल की गायें चंचल, फुर्तिली, निडर लेकिन पोस मानने वाली होती हैं। इनका रंग हल्का पीला, बादामी या लाल होता है जिसमें चेहरा पर, पीछे के पुटठों पर और पैरों पर उजला चिन्ह रहता है। पूंछ का गुच्छा भी उजला ही रहता है। इनके अतिरिक्त कुछ और उजले दाग शरीर के अन्य भागों पर हो सकते हैं। ललाट दूहरे तस्तरी की तरह होती है। सींग सिर से निकलकर आगे की ओर मुड़ जाते हैं। गर्नेसी नस्ल की गायों के शरीर पर अनियमित आकार के उभार एवं गड्ढे रहते हैं। इनकी असमानता होल्सटीन से कम और जर्सी से ज्यादा होती हैं गायों का शारीरिक वजन 360 से 600 किलोग्राम के बीच रहता है। इस नस्ल की गायों की

दूध उत्पादन क्षमता हौल्सटीन की अपेक्षा कम होती है परन्तु उसमें वसा का अनुपात ज्यादा रहता है। 300 दिनों की एक व्यांत में इस नस्ल की गाये औसतन 5000 किलोग्राम दूध देती हैं।

2. वंशावली

वंशावली अभिलेख किसी गाय के चुनाव करने में सहायक होती है। लेकिन हमारे देश में किसी गाय की वंशावली अभिलेख मिलना प्रायः सम्भव नहीं है क्योंकि इसे पालन करने का प्रचलन नहीं है। इस तरह का अभिलेख किसी व्यवस्थित गव्य प्रक्षेत्र में ही रखा जाता है। किसी भी गाय की वंशावली अभिलेख रहना एक अच्छी बात है, हर पशु पालक को इसका पालन करना चाहिए। किसी खास गाय के वंशावली अभिलेख में उस गाय के विषय में तो पूर्ण वर्णन रहता ही है, उसके पूर्वज का परिचय एवं उत्पादन क्षमता भी अंकित रहता है।

गायों के चयन में साधारण तथा दुधारू पशु के माँ की दूध उत्पादन क्षमता काफी महत्वपूर्ण होती है। मनुष्यों की तरह पशुओं के सारे कार्य कलाप उनकी कोशिकाओं में अवस्थित जीन्स के द्वारा निर्धारित होता है। दूध उत्पादन क्षमता नर एवं मादा के गुण सूत्रों द्वारा निर्धारित होता है। नर भी मादा की तरह दूध उत्पादन में योगदान करता है। नस्ल सुधार पशुओं के अच्छे जीन्स के चयन द्वारा किया जाता है।

3. उत्पादन क्षमता

किसी भी गाय को खरीदने के पहले उसकी उत्पादन क्षमता की जांच आवश्यक है। उस गाय द्वारा कम से कम तीन शाम के दूध देने की मात्रा का औसत ही उसकी क्षमता का मापदंड माना जा सकता है। दूध की मात्रा, व्यांत की संख्या तथा व्यांत की अवधि पर निर्भर करता है। कुछ गायों की नस्ल, आकृति एवं वंशावली क्षमता संतोषप्रद रहने के बावजूद भी संतुलित आहार एवं समुचित प्रबंधन के अभाव में कम दूध देती है। यदि उन्हें आवश्यकतानुसार संतुलित आहार एवं समुचित प्रबन्धन दिया जाये तो अगले व्यांत से वे अपनी वंशावली क्षमता के अनुरूप दूध देने लगेगी।

4. स्वास्थ्य

किसी भी गाय के चुनाव में स्वास्थ्य एक मुख्य कारक है। किसी गाय को खरीदने से पहले यह देखना चाहिए कि वह किसी पुरानी बीमारी तथा थनैल

रोग से तो पीड़ित नहीं है। गायों की पुरानी बीमारियों में अतिसार, ब्रुसलोसिस एवं टी.वी. है। अतिसार में पतला पाखाना होता है। ब्रुसलोसिस एवं टी.वी. की जांच होती है। लेकिन एक सामान्य पशु पालक के लिए यह संभव नहीं हो पाता। फिर भी कोई नई गाय खरीदने पर उसे पहली गायों से अलग रखना चाहिए। पूर्ण आश्वस्थ होने पर और कृमिनाशक दवा की एक खुराक पिलाकर ही समूह में मिलाना चाहिए।

बीमार एवं स्वस्थ पशुओं के लक्षण

मानक	स्वस्थ पशु	बीमार पशु
सामान्य प्रकृति	चौकना, जीवन्त	सुस्त
पागुर	सामान्य	असामान्य
अभिव्यक्ति	सामान्य	असामान्य
शरीर की स्थिति	चमक तथा मुलायम रोंये अपनी सामान्य स्थिति में	असामान्य, कुछ बीमारियों में रोंये खड़े हो जाते हैं।
बैठनें या खड़े रहने की स्थिति	सामान्य	असामान्य
दिखाई पड़ने वाले श्लेस्म	सामान्य रंग	पीला या लाल
थुथुन	ठंढ़ा या नम	सूखा एवं गर्म
मुँह	सामान्य, पागुर सामान्य	पागुर बंद, लार की मात्रा अधिक
जीभ	सामान्य एवं फोड़ा रहित	जीभ पर परत बन जाती है, कुछ बीमारियों में फोड़े निकल आते हैं।
आँखे	चौकन्नी	कुछ बीमारियों में आँखे भीतर धंस जाती हैं।
पाखाना	सामान्य	दस्त या कब्ज

पेशाब	सामान्य	रूका हुआ या ज्यादा कुछ बीमारियों में खूनी
शरीर का तापक्रम (°F)	101—102 °F	अधिक या कम
नाड़ी (प्रति मि0)	50—70	अधिक या कम
श्वांस (प्रति मि0)	10—30	अधिक या कम

❑

साहीवाल गाय

लाल सिन्धी गाय

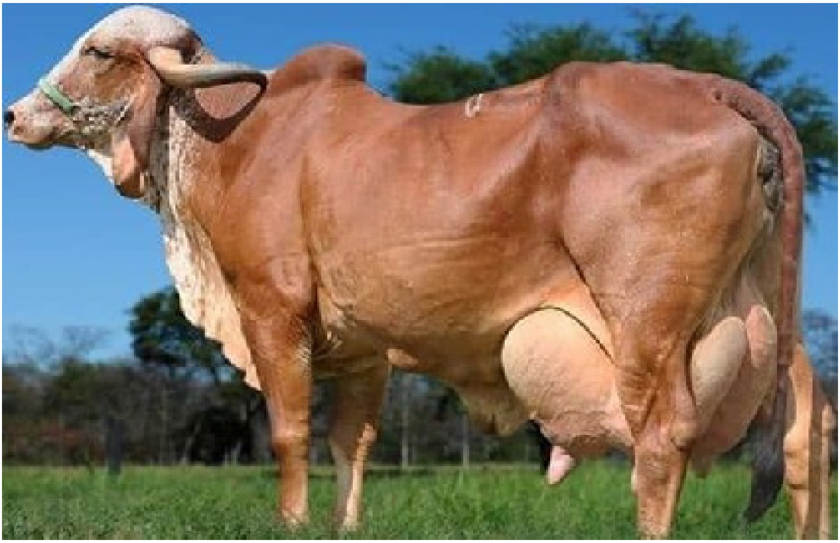

गीर गाय

देवनी गाय

हरियाणा गाय

थारपाकर गाय

ओंगोल गाय

कांकरेज गाय

होल्सटीन-फ्रीजियन गाय

जर्सी गाय

ब्राउन स्वीस गाय

आयरशायर गाय

गर्नेसी गाय

अध्याय-3

पशुओं का प्रजनन

दूध उत्पादन पशुओं के प्रजनन पर ही आधारित है, इसलिए किसान भाईयों को अधिक दूध उत्पादन के लिए पशुओं के प्रजनन से संबंधित जानकारी अति आवश्यक है। पशुओं के व्यस्क होने की अवस्था, प्रजनन की जानकारी तथा गर्भाधान कराने के समय से संबंधित जानकारी निम्नांकित तालिका में प्रस्तुत है।

गो-पशुओं के प्रजनन की आयु एवं गर्भाधान का समय

क्र.सं.	विवरण	देशी गाय	संकर नस्ल की गाय	भैंस
1.	प्रथम प्रजनन की आयु (माह)	30–36 माह	12–18 माह	15–30 माह
2.	प्रथम गर्भाधान की अनुशंसित अवस्था (माह)	30–36 माह	15–18 माह	25–30 माह
3.	ऋतु चक्र की अवधि (दिन)	21 दिन	21 दिन	21 दिन
4.	गर्म रहने की अवधि (घंटे)	18 घंटे	18 घंटे	24 घंटे
5.	अंडा निस्सरण का समय	गर्म होने के लक्षण प्रारंभ होने के 12 घंटे बाद	गर्म होने के लक्षण प्रारंभ होने के 12 घंटे बाद	गर्म होने के लक्षण प्रारंभ होने के 8–12 घंटे बाद
6.	गर्भाधान का समय	गर्म होने के लक्षण प्रारंभ होने के 10–14 घंटे बाद	गर्म होने के लक्षण प्रारंभ होने के 10–14 घंटे बाद	मर्ग होने के लक्षण प्रारंभ होने के 16–20 घंटे बाद

7.	बच्चा जनने के बाद गर्भाधान के अनुशंसित अवधि (दिन)	60 दिन	60 दिन	60 दिन
8.	औसत गर्भावस्था के अवधि (माह)	280 दिन	280 दिन	312 दिन

संकरण से उत्पन्न संतानों का प्रदर्शन : ऐसा पाया गया कि शुद्ध विदेशी गो नस्ल से शुद्ध देशी गो की संकरण से उत्पन्न पहली पीढ़ी की संतानों (एफ–1 पीढ़ी) की उत्पादन क्षमता काफी बढ़ जाती है। ऐसी संतानों में भारतीय एवं विदेशी नस्लों के जीन्स 50–50 प्रतिशत रहते है। ऐसी संताने भारतीय परिवेश में निरोग रहती है और अच्छी तरह फलती–फूलती हैं। पहली पीढ़ी की दुधारू गायें अर्द्धनौकाकार लगती हैं। दुधारू गायों का थन शरीर से सटा हुआ (लटका हुआ नहीं) एवं आकार में बड़ा होता है। थन पर की खून की नसे मोटी, उभरी हुई तथा घुमावदार होती है। छीमियाँ सामान्य लम्बाई की होती हैं तथा उनकी स्थिति वर्गाकार होती है। संकरण के अनियंत्रित प्रयोग से काफी हानि भी हुई है।

विदेशी नस्लों से संकरण के लाभ:-

- प्रति व्यांत अधिक दूध उत्पादन
- दूध देने की लम्बी अवधि
- अधिक शारीरिक वृद्धि दर
- व्यस्क होने की छोटी अवधि
- कम समय में बच्चे देना
- नवजात बच्चे का अधिक शारीरिक वजन
- अच्छी प्रजनन क्षमता
- असंयोजक तत्वों का अच्छा पूरक कम्पलीमेंटरिटि ऑफ नन एडीटीव फैक्टर्स (Complimentarity of Nanadditive Factors) होने से वर्णसंकर क्षमता (हाईब्रीड विगर) में वृद्धि
- कम वंशानुगतत्वता हेरिटैबिलिटि (Heritability) वाले गुणों में संकर क्षमता अधिक होती है। दूध उत्पादन, जनन क्षमता, जीवित रहने की क्षमता कम वंशानुगत्वता वाले गुण हैं।

- संकर नस्ल के पशु अपेक्षाकृत शांत होते हैं।
- इन पशुओं के गर्म होने की पहचान तथा कृत्रिम गर्भाधान करना आसान होता है।

संकरण से हानि

- अच्छे पशुओं की उपलब्धता, खरीद एवं रख–रखाव में अधिक खर्च
- संकर पशुओं को अपेक्षाकृत अधिक एवं अच्छे भोजन की आवश्यकता होती है।
- संकर पशु छुतहा एवं संक्रामक बीमारियों से आसानी से संक्रमित होते हैं।
- इन पर वातावरण में बढ़ी गर्मी का विपरीत असर होता है।
- ये रक्त के परजीवी बीमारियों जैसे एनाप्लज्मोसिस, बैबेसियोसिस, टोक्सोप्लाज्मोसिस ट्रीप्मोसोमिएसिस से जल्द आक्रांत होती है।
- इनमें अढ़ैचा एवं दूग्धज्वर अधिक होता है।
- इस श्रेणी के नर पशुओं में वीर्य की गुणवत्ता तथा प्रजननता एवं हिमाँकिकता कम होती है।
- अच्छी नस्ल की देशी गायों का वर्हिप्रजनन विदेशी सांढ़ों से नहीं करना चाहिए।
- कम दूध देनेवाली अवर्णित (Non descript) गायों का संकरण विदेशी नस्लों से करना चाहिए।

❑

अध्याय-4

नवजात बाछा–बाछी का पालन–पोषण

किसी भी प्राणि का नवजात बच्चा काफी नाजूक होता है। इसलिए इसके पालन पोषण पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। गव्य व्यवसाय में तो बछड़ा पालन से बढ़कर और दूसरा महत्वपूर्ण कार्य नहीं है क्योंकि इसी पर पशुधन का आर्थिक भविष्य निर्भर करता है। एक स्वस्थ बछड़ा (नर/मादा) प्राप्त करने के लिए उसके माता की गर्भ से ही समुचित ध्यान देना चाहिए। वास्तव में बढ़ोतरी निषेचन से ही आरंभ हो जाती है। गर्भावस्था की बढ़ोतरी जन्म के बाद की बढ़ोतरी को प्रभावित करती है क्योंकि जन्म के बाद की बढ़ोतरी जन्म भार पर निर्भर करती है।

जिस समय गाय बच्चा को जन्म देती है, उस समय बच्चा का सारा शरीर, आँख, नाक, मुँह और कान श्लेष्मा से ढका रहता है। इसलिए सर्वप्रथम उसके आँख, नाक, मुँह और कान से श्लेष्मा को निकाल देना चाहिए जिससे बच्चा आसानी से सांस ले सके। फिर साफ कपड़ा या बोरी से सारा शरीर को पोंछकर साफ कर देना चाहिए। तत्तपश्चात्, बच्चा के पेट की नीचली सतह से पाँच सेन्टीमीटर छोड़कर उसकी नाभि को दो स्थानों पर साफ धागा से बाँधकर बीच में साफ कैंची या नया ब्लेड से काट देना चाहिए और कटे नाभि पर रुई द्वारा टिंचर आयोडिन या जेनसियन भायोलेट या अन्य कोई जीवाणु रोधक दवा लगा देना चाहिए। इस जीवाणुरोधक दवा को कम से कम एक सप्ताह तक या जब तक नाभि सुख न जाए प्रतिदिन सुबह–शाम लगाना चाहिए। इसके बाद यदि बच्चा को माँ से अलग नहीं करना हो तो उसे उसके माँ के सामने रख देना चाहिए। माँ उसे चाटकर साफ कर देती है। गर्भावस्था में बछड़ा की नाभि का योगदान उसके जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी से ही उसे माँ के शरीर से पोषक तत्व मिलते हैं।

बछड़ा को माँ से अलग करना (विनींग ऑफ काफ)

हमारे देश में बछड़ा को अकसर माँ के साथ ही पाला जाता है। लेकिन उसे माँ से अलग रखकर भी पाला जा सकता है। दोनों विधियों की अपनी–अपनी विशेषताऐं हैं। विश्व में जहाँ कहीं भी संगठित पशु प्रक्षेत्र है, वहाँ बछड़ा को माँ से अलग रखकर ही पाला जाता है। विदेशी नस्ल, संकर नस्ल, साहिवाल और सिन्धी नस्ल की गायें बच्चा अलग करना आसानी से मान जाती हैं। अन्य नस्लों की गायों में कठिनाई होती है। किसी भी नस्ल की गाय को प्रथम व्यांत से ही बच्चा को अलग रखकर दूध उतारने की आदत धराई जाए तो सुविधा होती है। कहीं–कहीं तो गाय को अपने बछड़ा को देखने भी नहीं दिया जाता। जन्म लेते ही उसे अलग कर दिया जाता है। जब गाय प्रसव वेदना में रहती है, उस समय उसके आँख पर एक पट्टी बाँध दी जाती है और बछड़ा को निकलते ही उसे हटा दिया जाता है। कुछ देर के बाद गाय बछड़ा को भूल जाती है। कहीं–कहीं 3–4 दिनों के बाद बछड़ा को अलग किया जाता है। लेकिन जितना जल्दी बछड़ा को अलग किया जाय उतना ही आसानी से गाय बिना बच्चा के मान जाती है। गाय की छीमी को बछड़ा द्वारा चूसना दूध उतारने में एक उत्प्रेरक का काम करता है। बछड़ा को अलग होने की हालत में हरा चारा या दाना मिश्रण से उत्प्रेरक का काम लेना चाहिए।

बछड़ा को माँ से अलग करने से लाभ

1. बछड़ा को माँ से अलग रखकर दूध पिलाने से पशुपालक को पता लग जाता है कि वह गाय कुल कितना दूध देती है। उसी के अनुसार वह उसकी दाना की मात्रा का निर्धारण कर सकता है।
2. गाय से अलग रखकर बछड़ा को दूध पिलाने से पशु पालक को यह पता रहता है कि बछड़ा को उसकी आवश्यकता के अनुसार दूध मिल रहा है या नहीं।
3. बछड़ा को अलग रखने से गाय स्वतंत्र हो जाती है। दूध देने के दौरान बछड़ा की मृत्यु हो जाने पर भी गाय को दूध देने में कोई व्यवधान नहीं पड़ता है।
4. ऐसा पाया गया है कि बछड़ा को अलग रखने से गाय जल्द गरम हो जाती है। इससे दो व्यातों के बीच का अन्तर कम जाता है।

5. बछड़ा आसानी से दूध के बदले दूसरे अनुरूप खाद्य पदार्थ पर पाला जा सकता है।
6. गाय के सम्पर्क से बछड़ा में होने वाली बीमारियों की सम्भावना नहीं रहती है।

बछड़ा को माँ से अलग करने से हानि

1. माँ से अलग किये हुए बछड़ा की देख–रेख एंव दूध पिलाने से एक अतिरिक्त काम बढ़ जाता है।
2. दूध पिलाने का बर्तन यदि पूर्णतः साफ नहीं हुआ तो वह बीमारियों का वाहक बन जाता है। इसलिए जिस बर्तन में दूध पिलाया जाय उसे अच्छी तरह किसी सफाई के पाउडर से धोकर धूप में सुखा लेना चाहिए या किसी जीवाणु नाशक घोल से धो लेना चाहिए।
3. इससे गाय मातृत्व भावना तथा बछड़ा मातृत्व प्रेम से वंचित रह जाते हैं। अलग किए गये बछड़ा के खान–पान में थोड़ी भी असावधानी से मृत्यु दर बढ़ जाती है। इसलिए माँ से अलग किए गये बछड़ों को नियम पूर्वक दूध पिलाना चाहिए तथा चारा दाना देना चाहिए। जहाँ एक से अधिक बछड़े हों, वहाँ सभी को अलग–अलग रखकर खिलाना पिलाना चाहिए अन्यथा बड़े मजबूत बछड़े छोटे बछड़ों को धक्का देकर हटा देते हैं और उनका दाना खा जाते हैं। इस प्रकार कमजोर, दिन पर दिन कमजोर होते हैं और मर जाते हैं।

बछड़ा को दूध विकल्प (Milk replacer) खिलाना- विशेष परिस्थिति में जैसे बछड़ा को जन्म देने के पश्चात् गाय की मृत्यु हो जाय या ज्यादा से ज्यादा आर्थिक लाभ प्राप्त करना हो तो बछड़ा को दूध विकल्प 30 दिन की आयु से ही खिलाकर दूध की बचत की जा सकती है लेकिन दूध विकल्प की रासायनिक संरचना सामान्य दूध की तरह ही होनी चाहिए। दूध में पाये जाने वाले ऊर्जा, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण एवं विटामिन दूध विकल्प में भी होना चाहिए। इनके अलावे दूध विकल्प में व्यूटरिक एसिड (Butyric Acid), साइट्रिक एसिड (Citric Acid), बछड़ा की बढ़ोतरी को बढ़ाने के लिए तथा बीमारियों से रक्षा के लिए कुछ एन्टीबाओटिक (Antibiotic) मिलाना चाहिए। दूध से दूध विकल्प पर बछड़ा की आदत धीरे–धीरे लगाना चाहिए।

दूध विकल्प की संरचना (प्रतिशत में)

गेहूं का आटा	10.0
सूखा मछली चूर्ण	12.0
तीसी खल्ली चूर्ण	40.0
सामान्य दूध	13.0
नारियल तेल	07.0
साइट्रिक एसिड	1.5
छोआ	10.0
खनिज लवण मिश्रण	3.0
तीसी का तेल	3.0
कुल	**99.5**
व्यूटरिक एसिड	0.3
एन्टोवाओटिक मिश्रण	0.3
विटामिन मिश्रण (ए1, बी2, डी3)	0.015

इस दूध विकल्प का 200 ग्राम, 800 ग्राम पानी में मिलाकर बछड़ा से शारीरिक वजन के अनुसार पिलाना चाहिए।

नवजात बछड़ा को दूध पीने के लिए प्रशिक्षण देना

मुँह ऊपर करके अपनी माँ के छीमी को चूसना बछड़ा का स्वभाविक गुण होता है। बाल्टी में नीचे रखे हुए दूध को स्वयं पीने के लिए प्रशिक्षण देना पड़ता है। इसके लिए अपनी दो अंगुलियों को बछड़ा के मुँह में रख दिया जाता है। बछड़ा उसे चूसने लगता है। एक चौड़े मुँह के बर्तन में दूध लेकर अंगुलियों के नीचे रखा जाता है। बछड़ा के चूसने के फलस्वरुप दूध दोनों अंगुलियों के बीच से चढ़ता हुआ बछड़ा के मुँह में जाने लगता है। जब बछड़ा को दूध का स्वाद मिलने लगता है तब वह अंगुलियों को नहीं छोड़ना चाहता। उसी क्षण धीरे–धीरे अंगुलियों को नीचे करते हुए बर्तन को जमीन पर रखकर अंगुलियों को हटा दिया जाता है। दो–तीन दिन ऐसा करने से बछड़ा स्वयं सिर नीचे करके दूध पीने लगता है।

नवजात (बाछा-बाछी) को फेनूस और दूध पिलाना

जन्म के बाद नवजात बछड़े को उसकी माँ का पहला दूध जिसे फेनूस या खीरसा कहते हैं, दो घंटे के अन्दर अवश्य पिलाना चाहिए। यह काफी पुष्टिकारक होता है। यह बछड़े का पहला पाखाना निकालने में मदद करता है और उसे बीमारियों से रक्षा करता है। प्रसव के बाद मादा के दूध में फेनूस वाला गुण 3 से 4 दिनों तक रहता है। बछड़े के वजन के दसवां भाग के बराबर ही एक दिन में फेनूस पिलाना चाहिए अन्यथा खूनी दस्त होने की सम्भावना रहती है। अर्थात यदि बछड़ा का वजन 25 किलोग्राम हो तो 24 घंटे में उसे 2.5 किलोग्राम ही दूध पिलाना चाहिए और इस मात्रा को भी दो या तीन बार बाँट करके (सुबह, दोपहर, शाम) पिलाना चाहिए। जन्म से 21 दिन तक बछड़े के वजन के दसवें भाग के बराबर ही प्रतिदिन दूध पिलाना चाहिए। तत्पश्चात 35 दिन तक पिलाये गये दूध की मात्रा बछड़े के वजन का पन्द्रहवाँ भाग और फिर 60 दिन तक बछड़े के वजन का बीसवां भाग के बराबर होना चाहिए। 35 दिन के बाद सामान्य दूध न पिलाकर चर्बी निकाला हुआ दूध (स्कीम मिल्क) पिलाया जा सकता है।

गाय की मृत्यु या किसी अन्य कारण से फेनूस न मिल पाये तो सामान्य दूध में 20 मिलिलीटर कॉड लीभर तेल या विटामिन ए का कोई अन्य श्रोत मिलाना चाहिए। इस दूध में फेनुस के ऐसा जुलाब का गुण लाने के लिए 70 मिलिलीटर अरण्डी का तेल भी मिलाना चाहिए।)

फेनूस की विशेषता:- (1) सामान्य दूध की अपेक्षा इसमें 4 गुणा ज्यादा प्रोटीन, 16 गुणा ज्यादा ऊर्जा, अत्यधिक मात्रा में खनिज लवण एवं विटामिन पाये जाते हैं। (2) बछड़ा के लिए यह जुलाब ऐसा काम करता है इस प्रकार उसका पहला पाखाना निकालने में मदद करता है। (3) इसमें रोग निरोधक प्रतिकाऐं होती हैं जो बछड़ा को अनेक बीमारियों से रक्षा करती है।

बछड़ा को विशेष प्रकार का दाना मिश्रण (Calf starter) खिलाना:-

इसी बीच जन्म से (दस) 10 दिन के बाद से ही बछड़े के लिए विशेष प्रकार का दाना मिश्रण (काफ स्टाटर) तथा अच्छे किस्म की सुखी मुलायम घास बछड़े के सामने खाने के लिए रखना चाहिए। इससे उसके पेट के अगले भाग (रुमेन) का विकास शीघ्रता से होने लगता है और डेढ़ से दो महिनों में ही पूर्ण विकसित हो जाता है और उसमें पशु पोषण के लिए आवश्यक

लाभकारी जीवाणुओं की संख्या बढ़ जाती है। जब रुमेन का पूर्ण विकास हो जाये अर्थात जब बछड़ा भी पागुर करने लगे तब उसे दूध पिलाने से कोई लाभ नहीं होता। इसलिए 60 दिन के बाद बछड़े को दूघ पिलाना धीरे–धीरे बन्द करके पूरा दूध मनुष्य के उपयोग में लाया जा सकता है। 60 से 90 दिनों तक बछड़े को विशेष प्रकार के दाना मिश्रण तथा अच्छे किस्म के घास पर रखा जा सकता है। (25 किलोग्राम बजन वाला एक बछड़ा के खाद्य पदार्थ का निर्धारण पशुपालक बन्धुओं के निर्देश के लिए तालिका में दर्शायी गई है।

जन्म से तीन महीना की आयु तक एक बछड़ा की खाद्य तालिका

बछड़ा की आयु	दूध की मात्रा (ग्राम)	चर्बी निकाला हुआ दूध की मात्रा (ग्राम)	बछड़ा के लिए विशेष दाना मिश्रण (ग्राम)	अच्छे किस्म का सुखा घास (ग्राम)
1 से 3 दिन	2500 फेनूस	——	——	——
4 से 7 दिन	2500 (दूध)	——	——	——
दूसरा सप्ताह	3000	——	50	200
तीसरा सप्ताह	3250	——	100	350
चौथा सप्ताह	3000	——	200	400
पांचवां सप्ताह	1500	1000	350	500
छठा सप्ताह	——	2500	550	550
सातवां सप्ताह	——	2000	600	600
आठवां सप्ताह	——	1750	700	650
नौवां सप्ताह	——	1250 60 दिन तक	800	750
दसवां सप्ताह	——	——	900	850
ग्यारहवां सप्ताह	——	——	1000	1000
बारहवां सप्ताह	——	——	1300	1200
तेरहवां सप्ताह	——	——	1500 90 दिन तक	1500

बछड़ों के लिए विशेष प्रकार के दाना मिश्रण का एक नमूना नीचे दिया जाता है :

दरा हुआ मकई	–	42 भाग
मुंगफली की खल्ली	–	28 भाग
मछली चूर्ण	–	07 भाग
गेहूं चोकर	–	20 भाग
खनिज लवन मिश्रण	–	03 भाग
		कुल 100 भाग

तीन महिना से व्यस्कता की उम्र तक बछडों (ओसर) का खाद्य प्रबन्धन

तीन महिना की आयु के बाद बाछा–बाछी की बढ़ोत्तरी काफी सक्रिय रहती है। समुचित खान–पान रहने पर 500 ग्राम से 1 किलोग्राम तक उनमें प्रतिदिन बढ़ोतरी होती है। अनुसंधान द्वारा पाया गया है कि 2 किलोग्राम हरा बरसीम, 2 किलोग्राम गेहूँ का भूसा और 2.5 से 3 किलोग्राम संतुलित दाना मिश्रण प्रतिदिन खिलाने से एक बछड़ा में 800 ग्राम से 1 किलोग्राम तक प्रतिदिन बढ़ोतरी होती है। इस तरह के खान पान पर भारतीय नस्ल के ओसर दो वर्ष में तथा संकर नस्ल के 16 से 18 महिनों में पूर्ण व्यस्क हो जाते हैं। ओसर को खिलाने वाला एक दाना मिश्रण का नमुना नीचे दिया जाता है :

मकई का दरा	–	35 भाग
मुंगफली की खल्ली	–	42 भाग
गेहूँ चोकर	–	20 भाग
खनिज लवण मिश्रण	–	2 भाग
साधारण नमक	–	1 भाग
	कुल	**100 भाग**

ओसरों की बढ़ोतरी गव्य व्यवसाय के लाभांश को प्रभावित करता है। इनकी संतोषप्रद बढ़ोतरी न होने के निम्नलिखित कारण है :

1. पोषक तत्वों (ऊर्जा, प्रोटीन, खनिजलवण एंव विटामिन्स) की कमी ।
2. बाहरी एवं भीतरी परजीवी का बोझ।
3. गोशाला एंव प्रबन्धन की स्थिति।

4. समुचित व्यायाम की कमी ।

5. नर को मादा से अलग करने की आयु।

6. संक्रामक बीमारियों का प्रकोप।

7. अनुवांशिकी

इन सभी कारकों पर नियंत्रण रखने के लिए ओसरों का समुचित खान–पान रखना चाहिए। कृमि नाशक दवा प्रत्येक तीन महिना पर देना चाहिए। बाहरी परजीवी से बचाव के लिए उन्हे नियमित धोना चाहिए और ब्रश करना चाहिए। यदि बाहरी परजीवी हो जाय तो परजीवी नाशक दवा लगाना चाहिए। उनके रहने का घर सुखा, साफ एंव हवादार होना चाहिए। उनके आवास को प्रत्येक छः महिना पर धुआँ द्वारा जीवाणु विहिन करना चाहिए। नर एवं मादा 6 महिनों के आयु के बाद से अलग रखना चाहिए। संक्रामक बीमारियों से रक्षा के लिए नियमित टीका लगवाना चाहिए तथा समुचित व्यायाम हेतु दो घंटा घुमाने की व्यवस्था करनी चाहिए।

विभिन्न जाति के पशुओं के दूध की प्रतिशत संरचना

पशुओं की प्रजाति	पानी	प्रोटिन	चर्बी	लैक्टेज (दूध शर्करा)	कैल्सियम	फास्फोरस	ऊर्जा (के कैल)	भस्म
गाय	872	3.50	3.70	4.90	0.12	0.95	73	0.71
बकरी	86.5	3.65	4.00	5.10	0.131	0.104	79	0.80
भेंड़ी	80.1	5.80	8.20	4.80	0.250	0.166	127	0.92
भैंस	83.0	0.80	7.40	4.90	0.180	0.120	109	0.78
ऊँट	87.2	3.70	4.20	4.10	0	0	76	0.75
सूकरी	80.4	5.40	8.30	5.00	0.252	0.151	126	0.85
कुतिया	75.4	11.20	9.60	3.10	0.352	0.222	164	0.73
बिल्ली	82.2	9.10	3.30	4.90	0	0	101	0.51
घोड़ी	89.	2.70	1.60	6.10	0.100	0.06	54	0.51
गदही	90.2	1.80	1.30	6.30	0	0	47	0.40
मनुष्य	87.5	1.00	4.40	7.00	0.035	0.0113	0	0.27

अध्याय-5

गर्भवती एवं दुधारू गायों का पालन पोषण

गर्भवती गाय : एक गर्भवती गाय को अपनी शरीर रक्षा के अलावे गर्भ में पल रहे बच्चे के पोषण के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। यदि वे दूध दे रही हैं या ओसर हैं तो दूध उत्पादन और बढ़ोतरी के लिए भी अतिरिक्त पोषक तत्वों की जरूरत होगी। गायों में गर्भावस्था औसतन नौ महिनों की होती है। ऐसा पाया गया है कि गर्भावस्था के प्रथम छः महिनों में अतिरिक्त खाद्य पदार्थों को खिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। लेकिन छः महिना के बाद 1 से 1.5 किलोग्राम दानामिश्रण प्रतिदिन गर्भ में पल रहे बच्चे की बढ़ोतरी के लिए खिलाना आवश्यक है। यदि गर्भवती गाय दूध भी दे रही हो तो सात महिना के बाद धीरे–धीरे दूध निकालना बन्द कर देना चाहिए ताकि दो महिना उन्हें आराम मिलें और शरीर संगठन का मौका मिले। आराम देने का बेहतर प्रभाव अगले व्यांत के उत्पादन पर पड़ता है।

दुधारु गाय : दुधारु पशु एक जटिल मशीन है जो निम्नकोटि के खाद्य पदार्थों को खाकर मनुष्य के लिए उत्तम कोटि के खाद्य पदार्थ का निर्माण करता है। एक दुधारु गाय को मुख्यतः दो कार्यों के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है पहला अपने शरीर की रक्षा के लिए और दूसरा दूध उत्पादन के लिए परन्तु यदि वे पूर्ण व्यस्क नहीं है या गाभिन भी है, तो अपनी बढ़ोत्तरी के लिए और गर्भ में पल रहे बच्चे के लिए भी पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। शरीर रक्षा के लिए तथा उत्पादन के लिए कितना पोषक तत्वों की आवश्यकता होगी यह क्रमशः उनके शारीरिक वजन सामान्य शारीरिक क्रिया, दूध की मात्रा और दूध में उपस्थित चर्बी पर निर्भर करता है। पुनः कौन–सा खाद्य पदार्थ या उनका मिश्रण कितनी मात्रा में दी जाए, इसका निर्धारण उन खाद्य पदार्थों में उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा पर निर्भर करता है। किसी भी गाय से उसकी क्षमता के अनुरुप दूध प्राप्त करने के लिए पर्याप्त मात्रा में संतुलित आहार खिलाना आवश्यक है।

संतुलित आहार का महत्व : वह आहार जिसमें ऊर्जा, वसा, प्रोटीन, खनिज लवण एंव विटामिन समुचित मात्रा में उपलब्ध हो, संतुलित आहार कहलाता है। गाय के आहार में इनमें से किसी एक की कमी या अधिकता उत्पादन, उत्पादन की लागत तथा सामान्य शारीरिक क्रिया को प्रभावित करता है। असंतुलित एंव अपर्याप्त आहार से नर एंव मादा पशुओं में संतोषप्रद बढ़ोत्तरी नहीं होती। आहार में प्रोटिन, कैल्सियम, फासफोरस विटामिन ए, विटामिन डी, सोडियम, लोहा, जस्ता आयोडिन की कमी से गायों में गर्म होने का च्रक अनियमित हो जाता है या विलकुल बन्द हो जाता है या गर्म होने पर भी डिम्ब नहीं निकलता। ऊर्जा की कमी से गायें सामान्य से ज्यादा समय तक गर्म रहती है। गर्भवती गायों में विटामिन ए की कमी से बछड़ा की बढ़ोतरी कम होगी और बछड़ा अन्धा पैदा हो सकता है कैल्सियम, फास्फोरस की कमी से प्रसूत ज्वर हो सकता है तथा दूध उत्पादन कम हो सकता है। अतः आहार में सभी पोषक तत्वों का समुचित मात्रा में रहना जरुरी है।

गायों के लिए संतुलित दाना मिश्रण तैयार करना : कोई भी अकेला आहार ऐसा नहीं है जिसमें सभी पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में उपस्थित हो। अदलहनीय अनाजों मकई, जौ, जई, बाजरा, गेहूँ, चावल इत्यादि और हरे चारों में ऊर्जा ज्यादा लेकिन प्रोटिन और कैल्सियम कम होते हैं। दलहनीय अनाजों चना, मूंग, मसूर और हरे चारों में प्रोटीन ज्यादा लेकिन ऊर्जा कम होती है। फिर भी इनमें कैल्सियम इतना ज्यादा नहीं रहता जो गायों की आवश्यकता की पूर्ति कर सके। अतः अलग से खनिज लवण मिश्रण मिलाना पड़ता है। तेलहन खल्लियों में प्रोटीन ज्यादा पाया जाता है। इसलिए दाना मिश्रण को संतुलित करने के लिए अनेक खाद्य पदार्थो को मिलाना पड़ता है। सामान्य व्यवहार में लगभग एक तिहाई अदलहनीय अनाज, एक तिहाई दलहनीय अनाज या एक तिहाई तेलहन खल्ली मिलाने से ऊर्जा और प्रोटीन में दाना मिश्रण संतुलित हो जाता है। खनिज लवणों के लिए प्रत्येक 100 किलोग्राम में दो किलोग्राम खनिज लवण मिश्रण तथा एक किलोग्राम साधारण नमक मिलाना चाहिए। पशु पालक बन्धुओं के निर्देशन के लिए कुछ दाना मिश्रण का सूत्र नीचे दिया जाता है :–

1.	मूंगफली/तिल/सरगुजा खल्ली या उनका मिश्रण	–	20 प्रतिशत
	गेहूँ चोकर/चावल कुन्डा या उनका मिश्रण	–	42 प्रतिशत
	मकई दरा	–	25 प्रतिशत

दाल चुन्नी	–	10 प्रतिशत
खनिज लवण मिश्रण	–	2 प्रतिशत
सधारण नमक	–	1 प्रतिशत
	कुल :	**100**
2. मूंगफली की खल्ली	–	15 प्रतिशत
तिसी खल्ली	–	20 प्रतिशत
दाल चुन्नी	–	17 प्रतिशत
चावल खुद्दी	–	30 प्रतिशत
चावल कुंडा	–	10 प्रतिशत
छोआ	–	5 प्रतिशत
खनिज लवण मिश्रण	–	2 प्रतिशत
साधारण नमक	–	1 प्रतिशत
	कुल :	**100**

हरा चारा नहीं मिलने की स्थिति में विटामिन मिश्रण (ए,डी3) 20 ग्राम/100 कि.ग्राम. में मिलाना चाहिए।

दाना मिश्रण खिलाने की मात्रा का निर्धारण : सामान्य व्यवहार में एक दुधारु गाय को सुखा और हरा चारा के अलावे एक किलोग्राम दाना मिश्रण शरीर रक्षा के लिए तथा प्रत्येक ढ़ाई किलोग्राम दूध पर एक किलोग्राम संतुलित दाना मिश्रण खिलाया जाता है। लेकिन यह सूत्र हर हालत में लागू नहीं होता। एक 350 किलोग्राम शारीरिक वजन वाली तथा 10 लीटर प्रतिदिन दूध जिसमें 4.5 प्रतिशत चर्बी हो, देने वाली गाय को 38 किलोग्राम अदलहनीय (मकई/जई/बाजरा) हरा चारा तथा 27 किलोग्राम दलहनीय (बरसीम/लुर्सन) हरा चारा के साथ मात्र 1 किलोग्राम संतुलित दाना मिश्रण खिलाने से आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति हो जाती है। इसलिए ऐसा किसान जो स्वयं हरा चारा उत्पादन करता है, अपेक्षाकृत कम लागत पर दूध उत्पादन कर सकता है। दलहनीय हरा चारा न मिलने की हालत में 10 लीटर दूध के लिए 50 किलोग्राम अदलहनीय हरा चारा के साथ 3 किलोग्राम संतुलित दाना–मिश्रण खिलाने पर आवश्यकता की पूर्ति हो सकेगी। इसी प्रकार चारा में सिर्फ सुखा

धान का पुआल या गेहूँ भूसा ही उपलब्ध हो तो 10 लीटर दूध के लिए 8 किलोग्राम सुखा चारा और 5 किलोग्राम संतुलित दाना मिश्रण खिलाने से आवश्यकता की पूर्ति हो सकेगी। अतः खिलाये जाने वाले पदार्थों की गुणवता के आधार पर ही उनकी मात्रा का निर्धारण करना चाहिए।

किसानों के लिए सबसे आसान तरीका यह है कि पहले जितनी मात्रा में दाना मिश्रण खिला रहे हैं, उससे अधिक मात्रा में खिलाकर दूध उत्पादन की मात्रा का सावधानीपूर्वक अवलोकन करें। अगर 2–3 दिनों में दूध बढ़ जाता हो तो पुनः बढ़ावें अन्यथा पहले से खिलाये गये मात्रा पर धीरे–धीरे आ जाएँ। फिर भी पर्याप्त मात्रा में दलहनीय, अदलहनीय हरा चारा, सुखा चारा और संतुलित दाना मिश्रण खिलाकर 20 किलोग्राम दूध उत्पादन तक ही आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति की जा सकती है। यदि कोई गाय 20 किलोग्राम से अधिक दूध प्रतिदिन देती है तो उसके शरीर में पहले से संचित पोषक तत्वों का व्यय होता है। यही कारण है कि गर्भावस्था में दुधारु गायों को शरीर संगठन के लिए आराम देना अति आवश्यक है।

जो गायें जितना ज्यादा दूध देती हैं उनकी सामान्य शारीरिक क्रिया विसुखी गायों की अपेक्षा तेजी से चलती है। इस बढ़ी हुई शारीरिक क्रिया के सम्पादन के लिए दूध देने वाली गायों के शारीरिक रक्षा के लिए ज्यादा पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार जो गायें जितना ज्यादा दूध देती हैं उन्हें शारीरिक रक्षा के लिए उसी अनुपात में ज्यादा खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है। इस बात को मद्‌दे नजर रखते हुए अमेरिका का नेशनल रिसर्च कॉन्सिल ने 20 किलोग्राम से अधिक दूध देने वाली गायों को प्रत्येक 10 किलोग्राम दूध के लिए 3 प्रतिशत खाद्य पदार्थ बढ़ा देने की अनुशंसा की है।

सूखा हरे चारों का मात्रा निर्धारण : सामान्यतः एक दुधारू गाय को 4–8 किलोग्राम सुखा चारा और कम से कम 10 किलोग्राम हरा चारा खिलाना चाहिए।

❑

अध्याय-6

दुधारू गायों के रख–रखाव में विशेष सावधानियाँ

गव्य व्यवसाय में दुधारु गायों के रख रखाव या प्रबन्धन एक ऐसा कारक है जो पशुओं के स्वास्थ्य तथा उत्पादन को प्रभावित करता है। गव्य पशुओं के समुचित प्रबन्धन के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना अति आवश्यक है :

1. **कार्यावली में नियमितता :** दुधारु गायें एक निश्चित आदत पकड़ लेती हैं। यदि उनके निर्धारित आदत के विपरीत काम करना पड़े तो उनकी उत्पादन में कमी हो जाती है। उदाहरण के लिए यदि पहले से उसे खिलाकर दुहा जाता है और किसी दिन बिना खिलाए ही दुहा जाय तो उसकी दूध की मात्रा कम हो जाएगी। इसी प्रकार यदि उसे प्रतिदिन प्रातः सात बजे दुहा जाता है और अचानक किसी दिन इससे पहले या बाद में दुहा जाए तो ऐसा करने पर भी दूध की मात्रा कमी आ जाएगी। इतना ही नहीं यदि उसके दाना मिश्रण के किसी एक अवयव में एकाएक फेर बदल कर दिया जाए तो वह दाना कम खाएगी और दूध उत्पादन प्रभावित हो जाएगा। इसी प्रकार यदि दूध दुहने वाला या खिलाने वाला व्यक्ति बदल जाए तो उनका उत्पादन प्रभावित हो जाएगा।

2. **व्यवहार में दयालुता :** दुधारु पशुओं के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि अपने परिवार के एक अबोध बच्चा के साथ व्यवहार करते हैं। ये उतना ही दया और प्रेम के पात्र हैं जितना की आपकी अपनी संतान। गर्मी, सर्दी, बरसात से रक्षा, इनके सफाई और खान–पान की समुचित व्यवस्था रखनी चाहिए। किसी भी परिस्थिति में पशुओं को नहीं मारना चाहिए। दुधारु पशुओं को मारने से उनके उत्पादन में कमी हो जाती है। आप जितना उनसे प्रेम करेंगे वे भी आप को उतना ही प्रेम प्रदान करेंगे और आपके लिए लाभप्रद साबित होंगे। ऐसा देखा जाता है कि चारागाह में

खुला चरता हुआ पशु अपने मालिक को देखकर उनके पास आ जाता है और उनका हाथ–पैर चाटने लगते हैं। यह उनके प्रेम का परिणाम है।

3. **व्यायाम :** व्यायाम से पशुओं की पाचन क्रिया ठीक रहती है और वे चुस्त तथा फुर्तिला रहते हैं। दुधारु पशुओं को ज्यादा व्यायाम की आवश्यकता नहीं होती। खाने के बाद ये जो चबाते है उससे कुछ व्यायाम हो जाता है। प्रर्याप्त व्यायाम के लिए इन्हें एक से दो घंटा बाहर घुमाना चाहिए। जो गायें घर में या आंगन में खुली रखी जाती है उन्हें बाहर घुमाना आवश्यक नहीं है। ज्यादा व्यायाम से शक्ति का व्यय होता है जिससे उत्पादन कम हो जाता है।

4. **ब्रश करना :** दुधारु पशुओं के बदन पर प्रतिदिन ब्रश करना चाहिए। इससे उनके शरीर पर पड़ी धूल और पुराने रोये साफ हो जाते हैं, चमड़े में चमक आ जाती है। चमड़ा मुलायम और लचीला हो जाता है। ब्रश करने से उपरी सतह पर रक्त संचालन बढ़ जाता है जिससे प्रजनन प्रक्रिया सुचारु रूप से चलने में मदद मिलती है।

5. **पशुओं को धोना :** कड़ाके की सर्दी के दिनों को छोड़कर प्रतिदिन पशुओं को धोना चाहिए। इससे शरीर की गर्मी समाप्त हो जाती है; सारी शारीरिक क्रियाऐं सामान्य रुप से चलती है। शरीर पर लगे गंदगी साफ हो जाती है और शरीर के उपर रहने वाले परजीवी जो अनेक घातक बीमारियों के वाहक होते हैं नहीं पैदा होते।

6. **अनचाहे केस को काटना :** लम्बे केस में धूल एवं अन्य खर–पतवार चिपक जाते हैं। इसलिए दुधारु गायों को साफ रखने और साफ दूध उत्पादन के लिए, उनके थन का, पेट का तथा पीछले भाग के लम्बे केस को काट देना चाहिए।

7. **दुधारु पशुओं को बिना सींग का रखना (डिबड़िग/डिहौर्निग) :** सींग वाली दुधारु गाय पालने में अनेक कठिनाईयां है। उदाहरण के लिए सींग वाली गायें दूसरों के लिए खतरा बनी रहती है। वे एक दूसरे को मारती है, खास करके थन में, जिससे थन हमेशा के लिए बर्बाद हो जाता है। ऐसी गायें रोज खिलाने–पिलाने वाला सेवक के लिए भी खतरा बनी रहती है। सींग वाली गायें गोशाला में ज्यादा जगह छेकती है। ऐसा पाया गया है कि बिना सींग वाली गायें बहुत सीधी रहती है

जिससे उन्हें खिलाने– पिलाने में सुविधा होती है। खास करके घर की महिलाओं और बच्चों को। इसलिए जन्म लेने के दो सप्ताह के अन्दर नवजात बाछियों को डिबडिंग करबा देना चाहिए जिससे जीवन भर उनका सींग न उगे। इसकी रासायनिक या भौतिक अनेक विधियाँ हैं। डिबडिंग या डिहौर्निंग किसी भी विधि से की जाए, हमेशा किसी कुशल पशु चिकित्सक द्वारा ही करवाना चाहिए।

8. **खुर काटना :** जो गायें बाहर चरने जाती हैं, उनका खुर तो स्वतः टूट कर एक समान सुडौल बने रहते हैं। परन्तु जो गाये हमेशा गोशाला में ही बन्धी रहती हैं उनके खुर काफी बढ़कर बेढंगे हो जाते हैं जिससे उन्हें चलने में कठिनाई होती है और संक्रमण की संभावना रहती है। ऐसी स्थिति में उनके खुर को किसी जानकार कुशल कारीगर से कटवा देना चाहिए।

9. **पानी का प्रबन्ध :** किसी भी जन्तु के जीवन के लिए हवा के बाद पानी ही सबसे ज्यादा आवश्यक है। पानी की आवश्यकता बाहरी वातावरण के तापमान, खाद्य पदार्थ के प्रकार, दूध उत्पादन की मात्रा तथा पानी के तापमान और गुणवता पर निर्भर करता है। सामान्य परिस्थितियों में एक विसुखी गाय को 24 घटों में पीने के लिए औसतन 35 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। 12 से 15 लीटर दूध देने वाली गाय को 50 लीटर तथा 35 से 40 लीटर दूध देने वाली गाय को 85 से 90 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। ऐसा पाया गया है कि यदि किसी दुधारु गाय को मनमाना शुद्ध पानी न मिले तो उसकी दूध उत्पादन की मात्रा घट जाती है। इसलिए एक दुधारु गाय के पानी पीने का नाद खाने के नाद के बगल में रहे तो सबसे अच्छा है ताकि वे आवश्यकतानुसार जब मन चाहे पानी पी सकें। यदि ऐसा सम्भव न हो तो एक दुधारु गाय को 24 घंटों में चार बार पीने के लिए पानी दिखाना चाहिए। यहाँ यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि पानी बीमारी उत्पादक कारको से रहित हो।

10. **दूध दुहना :** गायों द्वारा दूध देना एक भावात्मक प्रक्रिया है। दूध दुहते समय ऐसा वातावरण बनाना चाहिए जिससे गाय के दूध देने की भावना को ठेस न पहुँचे। उस समय निश्चित प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहिए। उदाहरण के लिए गाय दुहने का समय, दुहने बाला व्यक्ति एवं पद्धति

निश्चित हो ताकि दूध उतारने की प्रेरणा बाधित न हो। गाय दुहने का स्थान स्वच्छ, साफ एवं सुखा रहना चाहिए। वहाँ शोर–गुल न हो और अजनबी व्यक्ति न रहे। अधिक दूध देने वाली गाय का दूध मशीन द्वारा निकालना चाहिए। अनुसंधान द्वारा पाया गया है कि दूध दुहते समय यदि मधुर संगीत बजता रहे तो गायें ज्यादा दूध देती हैं। दूध दुहने के पहले गाय के थन को लाल पोटाश (पोटाशियम परमैगनेट) मिला हुआ सुसुम पानी से धोकर साफ तोलिया से पोंछ लेना चाहिए। इससे दूध में धूल–कण गिरने की सम्भावना नहीं रहती तथा जो गो–पालक दूध उतारने के लिए बछड़ा का प्रयोग करते हैं, उन्हें बछड़ा छोड़ने के पहले और बाद में भी थन धोना चाहिए। फिर दूध दुहने के पश्चात भी थन को धो देना चाहिए। इससे थनैल रोग होने की सम्भावना बहुत कम हो जाती है।

दूध दुहने के प्रेरक को पाते ही गाय के शरीर में एक विशेष प्रकार के हारमोन (आक्सीटोसीन) का श्राव होता है जिससे गाय को दूध उतारने की प्रेरणा जागृत होती है। उक्त हारमोन का उचित गाढ़ापन गाय के रक्त में 7 मिनट तक रहता है, इसलिए दूध इतनी तेजी से दूहना चाहिए ताकि सात मिनट के अन्दर पूरा दूध निकाल लिया जाए। ज्यादा विलम्ब होने पर दूध की मात्रा कम हो जाती है।

गाय की छीमी को पूरा मुट्ठी से पकड़कर दुहना सबसे अच्छी विधि है। यदि गाय की छीमी छोटी हो तो चुटकी से दुहना चाहिए। छीमी को अँगुठा से दबाकर कभी नहीं दुहना चाहिए। इससे छीमी को हानि होती है।

11. **दूध उत्पादन के मुख्य दो कारक हैं-** दुधारू पशु एवं इसमे लगे हुए कार्यकर्त्ता। इसके कार्यकर्त्ता को पूर्णतः प्रशिक्षित होना चाहिए।

❑

अध्याय-7
रोगोपचार

रोग उत्पन्न करने वाले कारक के आधार पर गव्य पशुओं (गाय–भैंस) में जितनी बीमारियाँ होती हैं उन्हें निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जाता हैं (1) विषाणुओं (वायरस) द्वारा उत्पन्न बीमारियाँ (2) जीवाणुओं (बैंक्ट्रिया) द्वारा उत्पन्न बीमारियाँ (3) प्रोटोजोआ द्वारा उत्पन्न बीमारियाँ (4) फफूंदी द्वारा उत्पन्न बीमारियाँ (5) परजीवी द्वारा उत्पन्न बीमारियाँ तथा (6) दैहिक (Systemic)। फैलने की गति के आधार पर बीमारियों को दो वर्गों में बांटा गया है–

1 तीव्र गति से फैलने वाली (Acute) (2) धीरे–धीरे फैलने या लम्बे समय तक फैलने वाली (Chronic)

(I) विषाणु जनित बीमारियाँ

विषाणु अत्यन्त ही सुक्ष्म जीव होते हैं। इन्हें साधारण सुक्ष्मदर्शी द्वारा नहीं देखा जा सकता। इन्हें इलेक्ट्रॉन सुक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जा सकता है। विषाणुजन्य बीमारियाँ आक्रान्त पशुओं के सम्पर्क से, भोजन, पानी, मक्खी, त्वचा की चोट, सेवक तथा हवा के झोके इत्यादि से शरीर में प्रवेश कर बड़ी तेजी से फैलती हैं। देखते ही देखते पशुओं का एक बहुत बड़ा समुदाय आक्रान्त हो जाता है। ये बीमारियाँ तीव्र रूप से धमाके के साथ आकर कुछ दिनों तक या लम्बे समय तक भी रह सकती हैं। गव्य पशुओं में होने वाले प्रमुख विषाणुजन्य बीमारियों के उत्पति, लक्षण चिकित्सा एवं नियंत्रण निम्नलिखित हैं :

1. **शीतला माता या रिन्डर पेस्ट-** यह एक अत्यन्त ही संक्रामक घातक बीमारी है।

   उत्पति एवं लक्षण : यह बीमारी सभी फटे खुर वाले पशुओं को होती हैं। इस रोग के विषाणु आक्रान्त पशुओं के लार, आँख और नाक के श्राव

तथा मल–मूत्र में पाये जाते हैं। यह महामारी के रूप में फैलती है। कुल आक्रान्त पशुओं में 95 प्रतिशत की मृत्यु हो जाती है। इसकी भयंकरता को ध्यान में रखते हुए 1954 ई0 में सरकार ने इसे बिल्कुल समाप्त करने का अभियान चलाया। इसमें काफी सफलता भी मिली हैं। फिर भी यह बीमारी कभी–कभी किसी सीमित स्थान में फैलते हुए पाया जाता है। स्वस्थ पशु के शरीर में विषाणुओं के प्रवेश करने के 3 से 7 दिनों के अन्दर इस बीमारी के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। इसके पूर्ण लक्षण दो अवस्थाओं में परिलक्षित होते हैं। पहली अवस्था में बुखार आता हैं जो 106 से 107 डिग्री फारेनहाइट तक बढ़ जाता है। बुखार आने सें पशु सुस्त हो जाता है। पागुर करना और खाना छोड़ देता है। थुथना सुखा रहता है। आँखे लाल हो जाती है और उनसे आँसु निकलने लगते हैं। मुँह से लार एवं नाक से पतला श्राव निकलने लगता है। यह अवस्था लगभग दो दिनों तक रहती है। दूसरी अवस्था में पशु के मुँह, मसूढ़ों, ओठ और जीभ के भीतर तथा सारे पाचन तंत्र में छोटे छोटे फोड़े निकल जाते हैं और बाद में फुटकर खुला घाव (अल्सर) बन जाते हैं। देखने में ये अकसर गेहूं के चोकर के रंग के प्रतीत होते हैं। इससे पशु को दुर्गन्धित पतला पैखाना (डायरिया) होने लगता है। पाखाना पिचकारी की तरह निकलता है जो कुछ दूरी पर गिरता है। पशु का सिर और पीछे का भाग नीचे झूक जाता है। तथा पीठ ऊपर की ओर उभर जाता है। इस प्रकार पशु धनुषाकार दिखाई देने लगता है। पतला दस्त से पशु काफी दुबला–पतला और कमजोर हो जाता है। अन्त तक अधिकांश रोगी को न्यूमोनिया हो जाता है। 7–10 दिनो में रोगी की मृत्यु हो जाती है।

रोग नियंत्रण : यद्यपि सरकार का दावा है कि इस बीमारी पर पूर्णतः नियंत्रण पा लिया गया है फिर भी यह कभी–कभी किसी क्षेत्र में इसके लक्षण पाये जाते हैं। अगर किसी भी पशु में शीतला माता रोग के लक्षण दृष्टिगोचर हो तो उसे अन्य पशुओं से बिल्कुल अलग कर देना चाहिए। उसके खान–पान तथा सेवक की अलग व्यवस्था कर देनी चाहिए। गोशाला की अच्छी तरह सफाई करके प्रतिदिन फिनाईल का छिड़काव करना चाहिए। अन्य स्वस्थ पशुओं को टीका दिलवा देना चाहिए। इस रोग की सूचना निकट के पशु चिकित्सालय में दे देनी चाहिए। रिन्डरपेस्ट रोग की उत्पति रोकने के लिए पशुओं को टीका दिलवाना अति आवश्यक है।

टीकाकरण : छोटे–बडे सभी मवेशियों को रिन्डरपेस्ट सेल कल्वर भैक्सीन से टीकाकरण करवाना चाहिए। टीका औषधि के डब्बे पर टीका तैयार करने वाला संस्थान या कम्पनी द्वारा टीकाकरण कि विधि लिख दी जाती है। सामान्यतः एक भाएल की टीका औषधि को 100 मिलीलीटर (एम.एल) डिस्टील्ड वाटर या नार्मल सलाइन में घोल तैयार किया जाता है। इसमे छोटे–बडे सभी पशुओं को एक एम. एल. गर्दन में चमड़ा के नीचे सूई द्वारा दिया जाता है। यह टीका नवजात बछड़ा को भी दिया जा सकता हैं लेकिन जिस पशु की आयु एक वर्ष से कम हो उन्हें 12 महिने के बाद पुनः टीकाकरण करवा देना जरुरी है। एक बार टीकाकरण के बाद 3 वर्षों तक इस बीमारी से पशुओं की रक्षा हो जाती है ।

रिन्डर पेस्ट की चिकित्सा : जिस मवेशी को माता चेचक का लक्षण दिखाई दे, उसे यथाशीघ्र दस्त रोधक दवा, केओलीन इत्यादि खिलाना शुरू कर देना चाहिए। साथ ही–साथ इलेक्ट्रोल पाउडर का घोल बनाकर पशु को पिलाते रहना चाहिए। पतला पखाना से शरीर में पानी की अत्यधिक कमी होने पर डेक्सड्रोज सलाइन या नार्मल सलाइन चढ़ाना चाहिए। विषाणुजन्य रोगों में मवेशी को अपने आप प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है लेकिन कमजोरी से अन्य विविध जटिलतायें उत्पन्न हो जाती है। इससे बचाव के लिए पशु को एन्टीबायोटिक जैसे टेरामाइसिन, क्लोक्सासिलीन तथा विटामिन बी कम्पलेक्स की सूईयां लगवाना चाहिए। इस रोग से पीड़ित मवेशी को 0.1 प्रतिशत, 20 सी. सी.लुगल्श आयोडीन का खून की नश में सूई दिलवाने से रोग अतिशीघ्र नियंत्रण में आ जाता है।

2. खुरहा चपका

यह भी खुर फटे पशुओं का अति संक्रामक विषाणु रोग है। यद्यपि इस बीमारी से भारतीय नस्ल के पशुओं में मृत्यु दर 2 से 3 प्रतिशत तथा विदेशी नस्लों में 10 से 20 प्रतिशत है। लेकिन इससे काफी आर्थिक क्षति होती है।

आरोग्य प्राप्त पशु काफी कमजोर हो जाते हैं। दुधारू पशुओं में दूध श्राव बन्द हो जाता है। उनकी प्रजनन क्षमता घट जाती है। उनके बाल असामान्य रूप से बढ़ने लगते हैं और थोड़ी–सी गर्मी में पशु हाफने लगते हैं। बैलों में काम करने की क्षमता काफी घट जाती है।

उत्पति एवं लक्षण : स्वस्थ पशुओं में यह बीमारी आक्रान्त पशुओं के सीधे सम्पर्क से या विषाणु मिश्रित दाना, पानी घास या किसी अन्य सम्पर्क श्रोत से इस बीमारी के विषाणु प्रवेश करते हैं। शरीर में प्रवेश के 2 से 5 दिनों के बाद बीमारी के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। सबसे पहले शारीरिक तापमान 104 से 105 डिग्री फा0 तक बढ़ जाता है। बुखार 24 से 48 घंटों तक रहता है। बुखार के कारण पशु सुस्त हो जाता है, खाना बन्द कर देता है। इसके बाद पशु के जीभ पर, थन पर और पैरों के खुढ़ो के बीच में फफोले उभर आते हैं जो बाद में फटकर छाला में परिणत हो जाते हैं। जीभ पर के छाला के कारण पशु खाने में असमर्थ हो जाता है। उसके मुंह से काफी मात्रा में लार निकलता है। पशु जीभ को बाहर निकाल देता है और उसे दोनो ओठों से दबाकर चुसता है जिससे चप–चप की आवाज निकलती है। यही कारण है कि इस बीमारी को चपका भी कहा जाता है। पशु की भूख समाप्त हो जाती है। वह काफी दुबला हो जाता है। यदि दुधारू गाय हो तो दूध देना बन्द कर देती है। जीवाणु शरीर के आन्तरिक अंगो जैसे आँत, हृदय, अन्तःश्रावी ग्रंथियों पर आक्रमण करता है। जिससे वे कमजोर हो जाते हैं। आक्रान्त पशु यद्यपि 3 सप्ताह में विषाणु मुक्त हो जाता है लेकिन पीव उत्पन्न करने वाले जीवाणु और पैर के घाव में कीड़ा पड़ जाने से स्थिति उलझ जाती है।

रोग की पहचान : बीमारी की प्रारंभिक अवस्था में पशु के मुंह से लार का श्राव इस बीमारी की पहचान है।

जीभ पर और दोनों खुर के बीच में फफोला और बाद में छाला की उपस्थिति से आसानी से पहचाना जा सकता है। माता चेचक में भी मुंह में और जीभ पर छाला पड़ता है। लेकिन दोनों खुर के बीच में छाला नहीं रहता है। इसके अलावा माता चेचक की तरह इसमें पतला दस्त (डाइरिया) नहीं होता।

उपचार : किसी भी मवेशी में खुरहा–चपका का लक्षण ज्योंहि मालूम पड़े, उसे स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए। उसके रखने के स्थान को अच्छी तरह सफाई करके, फिनायल का नियमित छिड़काव करना चाहिए। बीमार पशु के मुँह के छाला पर सुहागा का महीन बुकनी बनाकर, ग्लिसरीन में मिलाकर लगाने से तत्काल राहत मिलती है और

दो–तीन दिनो में ही मुँह का छाला ठीक हो जाता है। ऐसे लाल पोटास या फिटकिरी के घोल से मुँह धोने से भी आराम मिलता है और मुँह वाला छाला ठीक हो जाता है।

चारो पैर के दोनो खुर के बीच का फफोला फटकर अल्सर का रूप धारण कर लेता है। इसलिए दोनों खुर के बीच सफाई करके एन्टीसेपटिक मलहम् लगाकर पट्टी बाँधना चाहिए अन्यथा उसमें पिल्लू पड़ने की सम्भावना रहती है। यदि वहाँ पिल्लू दिखाई दे, तो फिनाईल की गोली का महीन चूर्ण बनाकर उस घाव में भरकर पट्टी बाँधना चाहिए। एक–दो दिन ऐसा करने से सारे पिल्लू मर जाते हैं। इसके बाद एन्टीसेपटिक मलहम् लगाकर तब तक ड्रेसिंग करना चाहिए, जब तक घाव पूर्णतः ठीक न हो जाए।

रोक थाम : इस बीमारी का टीका उपलब्ध है अतः इससे बचाव के लिए पशुओं को टीका अवश्य दिलवाना चाहिए।

3. चेचक या छोटी माता

चेचक एक चर्म रोग है जो विशेष प्रकार के विषाणुओं द्वारा उत्पन्न किया जाता है। यह एक छूआ–छूत की बीमारी है। गाय के अतिरिक्त यह रोग भैंस, बकरी, ऊंट, घोड़ा और बन्दर को हो सकता है। इसके विषाणु मनुष्य में छोटी चेचक उत्पन्न करने वाले विषाणु के समान ही होते हैं। आक्रान्त मनुष्य के सम्पर्क से यह गायों में होते हुए देखा गया है।

लक्षण : गाय के शरीर में विषाणु के प्रवेश के 2 से 5 दिनों में इस रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। सबसे पहले बुखार आता है जो लगभग 2 दिनों तक रहता है। इसी बीच मवेशी के बाल रहित भाग में पहले घमौरी की तरह दाने निकलते हैं जो बाद में बड़े होकर फफोले के समान बन जाते हैं। गायों में ऐसे फफोले जांघों, थन, तथा जननांगो के बाहरी भाग पर, दूध पीने वाले बछड़ों के मुंह के चारो ओर तथा नर पशु के अण्डकोष पर दृष्टिगोचर होते हैं। ये फफोले काफी दर्द करते हैं। लेकिन 2–3 सप्ताह में स्वतः सुख जाते हैं और आक्रान्त भाग पर एक पपड़ी पड़ जाती है। दुधारू गाय में चेचक होने पर दुहते समय फफोले फूट कर काफी दर्द करते हैं जिससे दूध उतारने में बाधा उत्पन्न होती

है। यदि इसका समुचित उपचार नहीं किया गया तो थनैल रोग होने की सम्भावना बनी रहती है।

रोकथाम एवं उपचार : किसी भी रोगाणु की उत्पति गन्दगी से होती है। इसलिए चेचक की रोक–थाम के लिए गाय एवं गोशाला कि सफाई तथा रोगाणु नाशक दवा का छिड़काव नियमित करना चाहिए। इसके साथ ही साथ चेचक का टीका नियमित लगवाना चाहिए। आक्रान्त अंगो को लाल–पोटाश के 1:1000 घोल से धोकर हिमैक्स, चार्लिस इत्यादि मलहम लगाना चाहिए। यद्यपि यह बीमारी नियत समय पर अपने आप ठीक हो जाती है लेकिन इससे जीवनी शक्ति कमजोर हो जाती है। अतः अन्य बीमारीयाँ जैसे न्युमोनिया, थनैल इत्यादि होने का डर रहता है। इनसे बचाव के लिए एन्टीबायोटिक जैसे टेरामायसीन की सूईयां एक सप्ताह तक लगाना चाहिए।

4. अढ़ैया या एफेमेरल फीवर

गो जाति में होने वाला विषाणु द्वारा एक ऐसी बीमारी है, जो धमाके से आती है। जिसमें उच्च ज्वर, माँस में सूजन, थरथराहट तथा लंगड़ापन हो जाता है।

उत्पति एवं लक्षण : यह रोग युवा, स्वस्थ बाछा/बाछी को अक्सर हुआ करता है। छः महिना से कम उम्र के बाछा /बाछी को शायद ही होता है। लेकिन जिन बछड़ों को फेनूस (खीरसा) नहीं पिलाया गया है, उन्हें कभी भी इस रोग से आक्रान्त होने की सम्भावना बनी रहती है। यह रोग पशुओं के रक्त चूसने वाली बड़ी मक्खी द्वारा फैलाया जाता है। सबसे पहले इस रोग में उच्च ज्वर (105 से 106 फा.) होता है। बुखार के कारण पशु हाँफता रहता है। नाक से धागे की तरह श्राव गिरने लगता है। इसके बाद पशु चारो पैरों में से किसी एक पैर से लंगड़ाने लगता है। कभी–कभी लंगड़ापन पैरो में बदल–बदल कर होता रहता है। आक्रान्त पशु के माँस का कम्पन एवं कमजोरी आसानी से दृष्टिगोचर होता है। पशु के शरीर में भयानक दर्द होता हैं, जो बैठ जाते हैं वे आसानी से खड़े नहीं होते। पशु खाना बन्द कर देता है। दूध देने वाली गायों का दूध उत्पादन काफी कम हो जाता है। दो से तीन दिनों के बाद पशु धीरे–धीरे ठीक होने लगता है और अधिकांश तीन से पांच दिनों में स्वतः ठीक हो जाते हैं। खराब मौसम में पड़ जाने से कोई–कोई पशु

को न्युमोनियाँ हो जाता है या कोई एक करवट बहुत दिनों तक लेटा रह जाता है।

रोकथाम उपचार : अधिकांश पशु स्वतः ठीक हो जाते हैं। लेकिन जीवनी शक्ति के ह्रास होने से अन्य समस्याऐं उत्पन्न होती हैं, जिससे पशु की मृत्यु हो जाती है। इससे बचाव के लिए पशु को बुखार उतारने वाली जैसे दवा एनालजीन, नोभालजिन तथा एन्टीवायोटिक जैसे टेरामाईसीन, क्लोकसासिलिन की सूईयाँ लगाना चाहिए।

5. रेवीज

रेवीज कुत्ता, बिल्ली, गीदड़ एवं अन्य माँसाहारी पशुओं का एक जानलेवा बीमारी है। यदि आक्रान्त पशु किसी गाय–भैंस या मनुष्य को काट ले तो इन्हें भी यह बीमारी होने की सम्भावना रहती है। यह एक भयानक बीमारी है, क्योंकि जिस किसी भी पशु या मनुष्य में यदि इसके लक्षण प्रकट हो जाते हैं तो फिर कोई इलाज नहीं, उसे मरना ही है। इस बीमारी के कारण एक विशेष प्रकार का विषाणु है जिसे रेब्डों वायरस कहते हैं। इस बीमारी का फैलाव आक्रान्त पशु के काटने से होता है। इस रोग के विषाणु आक्रान्त पशु के लार से विषाणु कटे हुए चमड़ा से माँस में प्रवेश कर जाता है। फिर माँस से तन्तुओं द्वारा मस्तिष्क में चला जाता है जहाँ वह तीव्र मस्तिष्क प्रदाह उत्पन्न करता है। स्वस्थ चमड़ा पर विषाणु का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। आक्रान्त पशु के काटने के 14 से 90 दिनों के बाद अक्सर इस रोग के लक्षण प्रकट होते हैं। लेकिन यह अवधि 300 दिन या इससे अधिक भी हो सकती है। क्योंकि यह मस्तिष्क से काटे हुए स्थान की दूरी पर निर्भर करता है। इसलिए पैर की अपेक्षा मुँह पर काटने से शीघ्र लक्षण प्रकट होते हैं। मनुष्य में इस रोग को हाइड्रोफोविया कहा जाता है, क्योंकि आक्रान्त मनुष्य पानी से डरता है। पालतु पशु या मनुष्य में इस जानलेवा बीमारी का प्रवेश ज्यादातर कुत्तों के काटने से ही होता है, इसलिए कुत्ता में इस रोग के लक्षण की जानकारी अति आवश्यक है ताकि ऐसे कुत्तों की पहचान कर बचाव के उपाय किये जाऐं। कुत्ते में इस रोग का लक्षण तीन भिन्न –भिन्न स्थिति में परिलक्षित होता है : (1) उदास स्थिति (2) उत्तेजनशील स्थिति और (3) गूंगा स्थिति।

(1) उदास स्थिति : कुत्ता के वर्ताव में अचानक ही बदलाव आ जाता है। वह चिड़चिड़ा हो जाता है, अकेले रहना पसन्द करता है, मालिक का कहना नहीं मानता, मनमौजी हो जाता है और भोजन से अरूची हो जाती है।

(2) उत्तेजनशील स्थिति : उदास स्थिति के लगभग एक सप्ताह के बाद उत्तेजनशील स्थिति आती है। इसमें कुत्ता बेचैन और उत्तेजित रहता है। कंठ नली के माँसपेशी के पक्षघात के कारण वह फटी–फटी सी आवाज निकालता है। किसी भी वस्तु को काटने की उसे प्रबल इच्छा होती है। वह निरूद्देश्य इधर–उधर घुमता है।

(3) गूंगा स्थिति : उत्तेजनशील स्थिति में कुत्ता अगर कुछ दिनों तक जीवित रहा तो उसकी स्वभाविक सतर्कता समाप्त हो जाती है। वह खाली–खाली नजरों से देखता हैं शीघ्र ही उसकी कंठ के मांसपेशियों का पक्षघात हो जाता है जिससे बोलने में असमर्थ हो जाता है। तत्पश्चात जबड़ा के मांसपेशियों का पक्षघात होता है जिससे जबड़ा लटक जाता है तथा पशु काटने में असमर्थ हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो उसके कंठ में हड्डी का टुकड़ा अटक गया हो। शीघ्र ही पशु चलने में भी असमर्थ हो जाता है और 1–4 दिनों में मृत्यु हो जाती है। रैबिज की कोई भी स्थिति हो लक्षण उत्पन्न होने के 7 दिनों में कुत्ता की मृत्यु हो जाती है।

बिल्लियों में तथा उन्य माँसाहारी जंगली पशुओं में सिर्फ उत्तेजनशील स्थिति ही दृष्टिगोचर होती है। इस बीमारी से आकान्त घोड़ों में प्रचण्ड पेट दर्द होता है। पशु समीप के वस्तुओं को दाँत से काटता है और लात मारता है। शीघ्र ही पीछे के पैरों का पक्षाघात हो जाता है तथा एक सप्ताह के अन्दर पशु की मृत्यु हो जाती है।

भयानक सिर दर्द, मिचली, आँख और नाक से पानी गिरना तथा कंठ का सुखा रहना मनुष्यों में इस बीमारी के लक्षण है। कंठ के माँसपेशियों का शीघ्र ही पक्षघात हो जाता है, जिससे मनुष्य खाने–पीने में असमर्थ हो जाता है। फिर पूरे शरीर के माँस पेशियों का पक्षघात हो जाता है और एक सप्ताह में उसकी मृत्यु हो जाती है। गो–जाति के पशुओं में रैबीज के लक्षण प्रकट होने पर पशु रात–दिन लगातार फटी–फटी

आवाज में बोलता रहता है। कंठ नली के माँसपेशियों के पक्षाधात होने के कारण पशु खाने–पीने में असमर्थ हो जाता है। उसे भूख–प्यास लगती है पानी–पीने के लिए पानी मुँह में ले जाता है, लेकिन पी नहीं सकता। मुँह से काफी लार गिरता है। अन्तिम अवस्था में जबडा लटक जाता है। जीभ बाहर निकल जाती है और पशु की मृत्यु हो जाती है।

रोकथाम एवं चिकित्सा: किसी भी प्राणी में रेबीज का लक्षण प्रकट होने पर उसका कोई भी उपचार नहीं है, उसे मरना ही है। लेकिन आश्चर्यजनक बात यह है कि रेबीज वायरस काफी सुकुमार होता है, प्रतिकुल परिस्थिति में शीघ्र ही इसकी मृत्यु हो जाती है और यह तब–तक बीमारी उत्पन नहीं कर सकता जब–तक कुछ समय तक कटे स्थान पर मौजूद नहीं रहता। इसीलिए ज्यों ही कुत्ता काटे तुरंत उस जगह को साबुन से अच्छी तरह धोकर कोई एन्टीसेपटिक जैसे सेवलोन, ओकाडीन, बेटाडीन लगा देना चाहिए। ऐसा करने से बीमारी उत्पन्न होने के 90 प्रतिशत संभावना नहीं रहती। लेकिन पूर्णतः बचाव के लिए टीका लेना चाहिए।

(II) जीवाणुओं (बैक्ट्रीया) द्वारा उत्पन्न बीमारीयाँ

जीवाणु पौधा का एक सुक्ष्म रुप है। इन्हें भी सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही देखा जा सकता है। ये विभिन्न आकार–प्रकार के होते हैं। ये हवा, पानी, मिट्टी, मनुष्यों तथा पशुओं के शरीर में पाये जाते हैं। कुछ जीवाणु लाभदायक और कुछ हानिकारक होते हैं। गाय में हानिकारक जीवाणुओं द्वारा पैदा किए गये रोगों में पिलबढ़वा या गिल्टी रोग (एन्थ्रेक्स), गलाघोटू, जहरवात और टी.बी. प्रमुख है।

(1) पिलबढ़वा या गिलटी रोग (एन्थ्रेक्स)

यह बीमारी अति वेग के साथ आता है। कभी–कभी पता नहीं चलता कि पशु को बीमारी हुई थी। एकाएक उसकी मृत्यु हो जाती है। यह बीमारी बेसिलस एन्थ्रासिस नामक जीवाणु द्वारा पैदा होती है। यह एक भयानक संक्रामक रोग है। गाय के अलावा यह भैंस, बकरी, सूकर, घोडा, कुत्ता, ऊँट आदि पशुओं को होता है तथा छुआ–छूत से मनुष्य में भी हो सकता है। भैंस में आम तौर पर यह कम होती है।

लक्षण : यह बीमारी होने पर पशुओं को 106 डिग्री से 108 डिग्री फा0 तक बुखार हो जाता है। पशु हांफता है तथा कांपने लगता है। उसके पेट में भयानक दर्द होता है। हांफने से उसके मुँह तथा नाक में फेन भर जाता है। कभी–कभी उस फेन में रक्त के लकीर दिखाई पडते हैं। यदि अविलम्ब चिकित्सा न की गई तो 36 घण्टें के अन्दर पशु की मृत्यु हो जाती है। मरने के बाद पशु के नाक, कान, मुँह तथा पाखाना, पेशाब के रास्ते से रक्त बाहर निकलने लगता है।

रोकथाम एवं उपचार : इस रोग से बचाव के लिए बरसात शरू होने से पहले मार्च–अप्रैल के महीने में पशुओं को एन्थ्रेक्स स्पोर भैक्सिन–1 मिलिलीटर चमड़ा के अन्दर सुई लगा देनी चाहिए। इस भैक्सिन का रोग प्रतिरोधक क्षमता एक वर्ष रहता है, इस लिए प्रत्येक वर्ष भैक्सिन दिलवाना चाहिए। ऐन्थ्रेस का जीवाणु बाहरी वातावरण में आते ही अपने उपर एक कवच बना लेता है। जिसे बिजाणु (स्पोर) कहते हैं। यह जीवाणु मिट्टी में अनिश्चित काल तक जीवित रहता है। स्वस्थ पशु में इस रोग को फैलने से रोकने के लिए, मरे हुए पशु के शव, उसके बिछावन और वहाँ की मिट्टी को भी जमीन में गहरा दबाकर चूना डालकर मिट्टी से ढ़क देना चाहिए। इसके लिए जमीन में छह फूट गहरा गड्ढा बनाकर उसके ऊपर एक फुट चुना डालना चाहिए। तत्पश्चात शव को डालकर पुनः उसके ऊपर एक फूट चुना डालकर मिट्टी से अच्छी तरह ढक देना चाहिए। सफाई का ध्यान रखना चाहिए। बीमार पशु में क्रिस्टेलाइन पेनिसिलिन चालीस से अस्सी लाख यूनिट या सल्फा समूह की दवा का माँस में सूई लगाना चाहिए। होमियोपैथी में एन्थासिनम नामक एक दवा है जो एन्थ्रेक्स से पीड़ित पशुओं की तिल्ली से तैयार की जाती है। इस दवा का उच्च पोटेन्सी आक्रान्त पशु को दिन में तीन बार खिलाना चाहिए। इससे दूसरे ही दिन बीमारी नियंत्रण में आ जाती है। जब बीमारी नियंत्रण में आ जाय तो इस दवा को बन्द कर देना चाहिए। यह दवा इस बीमारी की रोक थाम में भी कारगर साबित होती है। इसके लिए एन्थ्रासिन की दवा 200 पोटेंसी में स्वस्थ पशु को लगातार चार दिनों तक खिलाना चाहिए फिर तीन दिन छोड़कर चौथा दिन एक खुराक इस प्रकार चार बार खिलाकर बन्द कर देना चाहिए। इससे स्वस्थ पशु में इस बीमारी के प्रति रोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

2 गलाघोंटू या गरगटियाँ या डकहा (हेमोरेजिक सेप्टीसेमियाँ)

यह बीमारी भारत वर्ष में बरसात के मौसम में जहाँ पानी का जमाव होता है, अक्सर उत्पन्न होता है। गाय या भैंस दोनों इससे ज्यादा आक्रान्त होते हैं।

लक्षण : पासचूरेला मल्टोसीडा नामक जीवाणु के पशु शरीर में प्रवेश के दो दिनों के अन्दर इस बीमारी के लक्षण उत्पन्न होते हैं। सर्व प्रथम काफी उच्च बुखार आता है। पशु सुस्त हो जाता है और उसकी भूख समाप्त हो जाती है। साँस की गति तेज हो जाती है। मुँह से लार निकलने लगता है। आँख की झिल्ली गहरा लाल हो जाता है। गला में कंठ के निकट सूजन हो जाता है। यह सूजन धीरे–धीरे बड़ा होकर साँस नली पर दबाव देने लगता है। इससे पशु को साँस लेने में तकलीफ होती है। फलस्वरूप पशु जीभ निकाल देता है। यदि उचित और तत्काल चिकित्सा नहीं की गयी तो 3–4 दिनों में पशु कि मुत्यु हो जाती है। कभी–कभी पाचन संस्थान भी आक्रान्त हो जाता है। फलस्वरूप खून मिश्रित पतला पाखाना होता है।

रोकथाम एवं चिकित्सा : इस बीमारी की रोकथाम के लिए प्रतिवर्ष बरसात के पहले टीका दिलवा देना चाहिए। टीकौधी दो प्रकार का होता है– एलमप्रीसीपीटेट भैक्सिन इसे 5 मि.ली चमडा के नीचे अथवा दूसरा आयलएड़–जूबेंट भैक्सिन, इसे 2.5 एम.एल. माँस में दिया जाता है। जिस पशु में यह बीमारी दृष्टिगोचर हो, उसे स्वस्थ्य पशु से अलग रखना चाहिए। मृत पशु का शव मल–मूत्र एवं बिछावन को गहरा गड्ढ़ा में दबाकर चूना देकर गाड़ देना चाहिए। बीमार पशु का उपचार निम्नलिखित नुस्खा के अनुसार किया जा सकता है –

(1) सल्फामेजाथिन/सल्फाडिमिडीन (33.33 प्रतिशत) 100 से 200 एम.एल. नस में या चमड़ा में दें। चौबीस घण्टा बाद इसकी आधी मात्रा दुहरा दें।

(2) एन्थीजान/होस्टाकोटीन का 10 एम.एल. माँस में सूई दें।

(3) मोक्सेल 2 ग्राम या एमोक्सीसीलिन–2 ग्राम माँस में सूई दें।

इस बीमारी में टेरामाईसिन, आक्सीएसटेक्लीन या ओटमिस या बोलीसाइ–किल्न नामक दवाऐं भी फायदा करती हैं। इन दवाइयों का 50 एम.एल. सीधे नस में सूई लगाने से जल्द फायदा करता है।

3 लंगडा बुखार / ब्लैक क्वाटर / ब्लैक लेग / जहरबाद

यह भी एक प्रचंड़ बेग से आने वाला संक्रामक रोग है, जो गाय, बैल, भेडों और घोडों को अधिक गर्म और आर्द्र क्षेत्रों में वर्षा ऋतु के आरम्भ में होता है। गाय जाति में 6 महीना से 2 वर्ष के पशु इस रोग से ज्यादा आक्रान्त होते हैं। गायों और बैलों की अपेक्षा भैंसो में यह रोग हल्के रूप में होता है। यह रोग क्लोसट्रिडीयम चौभाई एवं क्लोसट्रिडीयम सेप्टीका नामक जीवाणु के द्वारा उत्पन्न होता है। यह जीवाणु बाहरी वातावरण में बीजाणु पैदा करता है जो पशुओं के खाने–पीने के चीजों के साथ या शरीर के किसी कटे भाग या घाव के द्वारा भी शरीर में प्रवेश कर जाता है और रोग के लक्षण पैदा किये बिना भी बहुत दिनों तक पड़े रहते हैं। फिर अनुकूल परिस्थिति पाकर रोग उत्पन्न करते हैं।

लक्षण : इस रोग में बहुत तेज बुखार होता है। जांघ पर और गर्दन के माँसल भाग में सूजन और सूजे में काफी दर्द हो जाता है। कभी–कभी गले और जीभ पर भी सूजन होता है। दर्द के कारण पशु लंगड़ाकर चलता है या चलने में असमर्थ हो जाता है। सूजे हुए भाग को दबाने से कुड़–कुड़ आवाज होता है। जैसा की सुखे हुए पुआल के दबाने से होता है। सूजन वाले भाग को छूने से लगता है, मानो जल भरा हो तथा काफी गरम रहता है। कुड़–कुड़ की आवाज गैस भरा रहने के कारण होता है। कभी कभी सूजन वाला भाग सड़ा घाव का रूप धारण कर लेता है। तत्काल चिकित्सा नहीं की गई तो पशु की मृत्यु 24 घण्टे में हो जाती है।

रोकथाम एवं उपचार : इस रोग के उत्पन्न होने से रोकने के लिए बरसात के पहले हर साल पशु को बी. क्यू भैक्सीन (टीका) पांच मि.ली. चमड़ा में दिलवा देना चाहिए।

आक्रान्त पशु को पेनिसीलिन या टेटरासाइक्लिन दूना मात्रा में चार से छः दिन तक लगातार माँस में सूई देना चाहिए। पशु को तत्काल राहत पहुँचाने के लिए एनालजिन या नोभालजिन पन्द्रह मि.ली. माँस में सूई देनी चाहिए।

4 टूबरकुलोसिस / पशु टी.बी. / तपेदिक / यक्ष्मा / क्षय

टूबरकुलोसिस पशुओं का एक संक्रामक एवं प्राण घातक बीमारी है। यह बीमारी मनुष्य से पशुओं में या पशुओं से मनुष्य में फैल सकता है। इससे पशुधन की बहुत हानि होती है। इस बीमारी से आक्रान्त पशु को हमेशा बुखार रहता है जो शाम में हमेशा बढ़ जाता है। वह धीरे–धीरे कमजोर हो जाता है, उनकी भूख बन्द हो जाती है और कुछ दिनों में उसकी मृत्यु हो जाती है।

यह बीमारी माईक्रोबैकट्रीयम टुबरकुलोसिस नामक जीवाणु द्वारा उत्पन्न होता है। स्वस्थ पशु जब आक्रांत मनुष्य या पशु के सम्पर्क में आते हैं, तब उन्हें भी यह रोग धर लेता है। शारीरिक रूप से कमजोर पशु ज्यादा और शीघ्र आक्रान्त हो जाते हैं। आक्रान्त पशु या मनुष्य के मल–मूत्र, खखाड़ या अन्य श्राव से निकलकर जीवाणु खाद्य पदार्थ या वायुमंडल में मौजूद रहते है। उस खाद्य पदार्थ को रखने से या साँस द्वारा भी जीवाणु स्वस्थ पशु में प्रवेश कर जाते हैं।

लक्षण : टुबरकुलोसिस शरीर के कई अंग में हो जाता है। इसलिए बाहरी लक्षण आक्रान्त अंगो के अनुसार विभिन्न प्रकार का होता है। परन्तु प्रत्येक दशा में दिन पर दिन पशु कमजोर होता जाएगा, उसकी भूख मन्द हो जाती है। आक्रान्त पशु सरल सुस्त हो जाता है। उसकी आंखों में चमक आ जाती है, तथा चौकना रहने लगता है। टी. बी. से अगर फेफड़ा आक्रान्त हो तो पशु दीर्घकालिक खाँसी से पीड़ित रहता है। हल्की शारीरिक परिचालन से खाँसी शुरू हो जाता है। कंठ नली के पास वाली लसिका ग्रन्थी में सूजन होने से साँस नली पर दबाव पड़ता है जिससे पशु को साँस की तकलीफ होती है। मेडिस्टाइनल लसिका ग्रन्थी में सूजन से पशु डकार नहीं ले सकता, जिससे पशु के पेट के पहला भाग में गैस एकत्रित होता है। फलस्वरूप पशु अफरा से बार–बार पीड़ित होता है। यदि आँत आक्रान्त हुआ तो पशु को दीर्घकालिक पतला पाखाना होता है। यदि जनन तंत्र आक्रान्त हुआ तो मादा पशु को गर्भधारण क्षमता बहुत कम हो जाती है गर्भवती मादा पशु का गर्भपात हो जाता है। जनन मार्ग से पीला श्राव निकलता है। यदि थन आक्रान्त हुआ तो थनैल हो जाता है, थन का आकार बढ़ जाता है और बहुत कड़ा हो जाता है। दूध का रंग बदल जाता है।

पहचान : वाह्रय लक्षण ही टी.बी. को पहचानने के लिए पर्याप्त है। यदि निश्चित पहचान संदेहात्मक हो तो श्राव को सूक्ष्म दर्शी से जीवाणु देखकर किया जा सकता है। डी.आई.डी. टयूवरकुलीन टेस्ट से इसकी पहचान की जाती है।

चिकित्सा : पशुओं में टी.बी. की चिकित्सा उपयुक्त नहीं है, क्योंकि काफी लम्बी और मंहगी होती है। साथ ही साथ उपचार में रहने वाले पशु दूसरे पशुओं एवं मनुष्यों के लिए रोग संचार के श्रोत रहते हैं।

रोग की रोकथाम : इस रोग के रोकथाम अति आवश्यक है। इसके लिए प्रत्येक छः महीना पर टयूवरकुलीन जाँच करके आक्रान्त पशु की पहचान करनी चाहिए।

विदेशों में आक्रान्त पशुओं का बध कर दिया जाता है। लेकिन भारत वर्ष में यह विधि संभव नहीं है। यहाँ आक्रान्त पशुओं को गो–सदन भेज देना चाहिए। आक्रान्त और स्वस्थ पशुओं को अलग–अलग रखना चाहिए। आक्रान्त गर्भवती मादा पशु से उत्पन्न बच्चे टी.बी. की बीमारी से मुक्त रहते हैं लेकिन जन्म लेते ही इन्हें माँ से अलग करना आवश्यक है।

5 बुस्लोसिस

बुस्लोसिस गो–भैस, बकरी, भेड़ी एवं सुकर जाति को आक्रान्त करने वाला एक ऐसी बीमारी है जिससे बहुत ज्यादा आर्थिक हानि होती है। इससे आक्रान्त गर्भवती मादा को गर्भावस्था के अन्तिम अवस्था में गर्भपात हो जाता है, कुछ बांझ हो जाते हैं और उनका दूध उत्पादन घट जाता है।

यह बीमारी सारे संसार में होता है। भारत वर्ष के सभी भागों में कम या ज्यादा यह बीमारी पाई जाती है। गाय एवं भैंस में ब्रुस्ला एवौर्टस नामक जीवाणु के द्वारा यह बीमारी उत्पन्न की जाती है। आक्रान्त पशुओं के सभी प्रकार के श्राव में यह जीवाणु पाया जाता है। ऐसे पशुओं के दूध पीने से मनुष्य में भी यह बीमारी होने की सम्भावना रहती है। आक्रांत मनुष्य में सविराम बुखार होता है।

लक्षण : गर्भवती मादा पशु में पाँच महिना के बाद गर्भपात हो जाता है। इसी प्रकार दूसरी, तीसरी तथा आगे होने वाले अन्य गर्भावस्था के अन्तिम तीन महिनों में गर्भपात हो जाना इस बीमारी का मुख्य लक्षण

है। गर्भपात के बाद जेर अक्सर अटक जाता है। बच्चेदानी में सूजन हो जाता है। मवेशी का रक्त जीवाणु से दुषित हो जाता है। जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है या सदा के लिए बांझ हो जाती है।

नर पशु (सांढ़) भी इस बीमारी से आक्रान्त होते हैं। नर पशु के अन्डग्रन्थि एवं शुक्र वाहिनी नली में सूजन हो जाता है। यदि समय पर चिकित्सा नहीं हुई तो अण्डग्रन्थि पूर्णतः बर्बाद हो जाता है और आक्रान्त सांढ़ सदा–सदा के लिए नपुंसक हो जाता है।

पहचान : गर्भावस्था के आखरी तीन महिनों में गर्भपात होने से इस रोग के होने की सम्भावना हो सकती है। लेकिन बाहरी लक्षण के आधार पर निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। गर्भपात इसी जीवाणु के कारण हुआ है इसको निश्चित करने के लिए आक्रान्त पशु का रक्त या उसके बच्चेदानी का श्राव या गर्भपात से निकला हुआ, मरा बच्चा के पेट का कोई भाग एक साफ जीवाणु रहित सीसा के पात्र में लेकर उसे प्रयोगशाला में भेजना चाहिए।

रोकथाम : आक्रांत मादा पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए और समुचित चिकित्सा के बाद ही मिलाना चाहिए। आक्रांत साँढ़ से गर्भाधान का काम नहीं लेना चाहिए।

गर्भपात से निकले मृत बच्चा को श्राव को और पशु के जेर को 4–5 फीट गढ्ढा खोदकर 2 इंच चूना देकर गाड़ देना चाहिए।

इस बीमारी से रक्षा के लिए टीका का भी इजाद हो चुका है। अतः उचित समय पर नियमित रूप से इसका टीका दिलवाना चाहिए।

चिकित्सा : एन्टीबायोटिक के व्यवहार से तत्काल जीवाणु दब जाते हैं लेकिन चिकित्सा बन्द होते ही पुनः प्रकट हो जाते हैं। इसलिए इसकी चिकित्सा की सिफारीस नहीं की जाती। इसके नियंत्रण के लिए निम्नलिखित उपाय करना चाहिए। (1) गोशाला की अच्छी तरह सफाई करना चाहिए। (2) मृत पैदा हुआ बछड़ा, गाय की जेर एवं बच्चेदानी से निकलने वाला श्राव को गोशाला से दूर जमीन में ब्लीचिंग पाउडर देकर गाड़ देना चाहिए। (3) गोशाला में जिस जगह पर श्राव गिरा हो वहां ब्लीचिंग पाउडर या फिनाइल का छिड़काव कर देना चाहिए। (4) प्रक्षेत्र के प्रत्येक पशु को ब्रुस्लोसिस की जाँच करवाकर, आक्रान्त पाये

गये पशु को अलग कर देना चाहिए। (5) बाहर के किसी भी मवेशी को ब्रुस्लोसिस के जाँच के बाद ही प्रक्षेत्र के अन्य पशुओं के साथ मिलाना चाहिए। (6) इस बीमारी का टीकाकरण होता है। अतः मवेशी को 3 से 6 महिना के आयु के बीच में टीकाकरण करवा देना चाहिए। एक बार टीका दिलवा देने पर पांचवें ब्यांत तक पशु को इसके विरोध प्रतिरोध क्षमता बनी रहती है।

6 थनैल / थनपका रोग (Mastitis):

थनैल, स्तनधारी सभी पशु और आदमी के स्तन की बीमारी है। इस बीमारी में स्तन में सूजन हो जाता है। स्तन लाल और गरम हो जाता है, उसमें काफी दर्द होता है जिससे पशु उसे छूने नहीं देती। स्तन के जिस भाग में यह बीमारी होती है, उस भाग से दूध कम निकलता है। दूध फटा–फटा पानी की तरह हो जाता है। किसी–किसी पशु को बुखार हो जाता है जिससे वे खाना बन्द कर देते हैं। इस बीमारी में काफी आर्थिक हानि होती है क्योंकि जिस उद्देश्य के लिए पशु पाला जाता है उसमें बाधा पड़ जाता है। ऐसा पाया गया है कि थनैल होने के पहले दूधारू पशु के थन या छीमी में चोट लगकर या दबाव से माँस की क्षति होती है जिससे रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु उसमें पैदा हो जाते हैं। यह क्षति अक्सर कड़ा फर्स पर बैठने से या बच्चा द्वारा छीमी काटने से या गलत विधि से दुहने से होता है।

थनैल रोग के रोक थाम :

- दुधारू पशु के बैठने की जगह कड़ा हो, सिंमेन्ट (सिमेंट कंक्रीट) किया हुआ हो, तो वहाँ पुआल का बिछावन देना चाहिए।
- यदि जन्म से ही नवजात बछड़ा को माँ से अलग रखकर दूध पिलाया जाय तो बछड़ा द्वारा छीमी को काटने की सम्भावना नहीं रहती है।
- दुधारू पशु को पुरा मुट्ठी से या चुटकी से दुहना चाहिए। हथेली और छीमी के बीच अँगुठा नहीं लगाना चाहिए ।
- दुधारू पशु को दुहने से पहले उसके थन एवं छीमी को लाल पोटास के घोल से धोकर साफ तौलिया से पोछ देना चाहिए तथा दुहने के बाद भी लाल पोटास के घोल से धो देना चाहिए। इसके साथ ही साथ दुहने वाले का हाथ भी लाल पोटास के घोल से धुलवा देना चाहिए।

- दुधारू पशु को दुहने से एक घंटा पहले और एक घंटा बाद नहीं बैठने देना चाहिए। इसके लिए उसे दुहने से एक घंटा पहले खाना दे दें और और दुहने के बाद भी खाना दे दें तो उसे बैठने का मौका नहीं मिलेगा।

  आक्रांत छीमी के दूध को अलग वर्तन में दुहकर जमीन में गाड़ देना चाहिए।

थनैल की चिकित्सा : ज्योंहि दुधारू पशु में थनैल रोग का लक्षण दिखाई दे, शीघ्रातिशीघ्र कुशल चिकित्सक से दिखाकर चिकित्सा शुरू कर देना चाहिए। ज्यादा बिलम्ब करने से बीमारी लाईलाज हो जाता है और थन को मर जाने की सम्भावना रहती है।

- अगर एक दो दिनों में सुधार न हो तो दूध में उपस्थित जीवाणु (bacteria) को जीवाणु नाशक (antibiotic) दवाओं के प्रति संवेदनशीलता (sensitivity) की जाच कराकर दवा करवाना चाहिए।
- चिकित्सा की होमियोपैथिक माध्यम में थनैल रोग की बड़ी कारगर दवाईयां हैं। मैने अनेक बार इनका सफल प्रयोग किया है। ज्योंहि थनैल रोग का लक्षण दिखाई दे तो बेलाडोना (belladonna -200)–5 से 10 बुन्द सुबह–शाम और फाइटोलाका (phytolacca)–5 से 10 बुन्द दोपहर, रात रोटी या गुड़ पर चुआकर खिलाना चाहिए इससे बीमारी एक सप्ताह के अन्दर ठीक हो जाता है।
- अगर दुधारू पशु का थन पत्थर की तरह कड़ा हो गया हो तो (graphitis-200) ग्रेफाइटिस–200 और (Conium-200) कोनियम–200 प्रयायक्रम से एक सुबह, दूसरा शाम खिलाना चाहिए।

प्रजीवाणु (प्रोटोजोआ) द्वारा उत्पन्न बीमारियाँ

1. **बबेसियासिस या लाल पेशाब :** यह बीमारी लाल रक्त कणों को तोडने वाला बाबेसिया प्रजाति के प्रजीवाणु (Protogoa) द्वारा उत्पन्न होता है। यह प्रजीवाणु किलनी/अठगोरिया (Tick) द्वारा आक्रांत पशु से स्वस्थ पशु में फैल जाता है। गो–जाति के पशुओं के अलावे यह बीमारी भेंड़ी, सुकर और घोड़ा में होता है।

   लक्षण : स्वस्थ पशु के शरीर में प्रवेश करने के 2–3 सप्ताह बाद इस बीमारी के लक्षण परिलक्षित होते हैं। सर्व प्रथम पशु को काफी बुखार

(104–106^{0} फा0) हो जाता है। आक्रान्त पशु पागुर करना और खाना बन्द कर देता है, सुस्त और कमजोर हो जाता है। साँस और हृदय की गति बढ़ जाती है। आँखे लाल हो जाती हैं। आकांत पशु का पेशाब हल्का लाल से गाढ़ा लाल हो जाता है। यही कारण है की इस बीमारी को लाल पेशाब भी कहा जाता है। दुधारू पशु दूध देना बन्द कर देते हैं। गाभिन मादा पशुओं को गर्भपात हो जाता है। अगर गाभिन पशु को गर्भपात नहीं हुआ तो गर्भ में पल रहे शिशु को यह प्रजीवाणु आक्रान्त नहीं कर पाते और जिस नवजात बछड़ा को माँ का पहला दूध (फेनूस/खिरसा) पिलाया जाता है उनमें भी इस बीमारी के प्रतिरोधक प्रतिकाएं उत्पन्न हो जाते हैं।

यदि समुचित चिकित्सा नहीं हुई तो 3 सप्ताह में पशु की मृत्यु हो जाती है। जो पशु बच जाते हैं वे काफी दुबले–पतले और रक्तहीन हो जाते हैं। कभी–कभी यह बीमारी मन्द गति से पशुओं को प्रभावित करता है। इस स्थिति में हल्का बुखार रहता है लेकिन पेशाब लाल नहीं होता। कभी–कभी यह प्रजीवाणु पशुओं के मस्तिष्क को प्रभावित करता है जिससे पशु लड़खड़ा कर चलने लगता और अन्त में उसके पिछले भाग को लकवा मार देता है।

चिकित्सा : 1. बेरेनिल (Berenil) नामक इसकी एक कारगर दवा है। बेरेनिल को 1.6 ग्राम प्रति 100 किलोग्राम शारीरिक भार की दर से श्रावित जल में घोल बनाकर माँस में सूई द्वारा दिया जाता है। इसके साथ एमिल नामक दवा भी देना चाहिए। 2. दूसरी कारगर दवा ट्रीपनब्लू है। पहले श्रावित जल में इसका भी दो प्रतिशत घोल तैयार किया जाता है। इस घोल का 80 से 100 मि.ली. सूई द्वारा आक्रांत पशु के शिरा (vein) में धीरे–धीरे चढ़ाया जाता है। चूंकि इस बीमारी में अत्यधिक रक्त की हानि होती है इसलिए पशु रक्त बनाने की सहायक दवा जैसे इम्फेरोन, फेरस सल्फेट एक–दो सप्ताह तक देना चाहिए। इस रोग के रोक थाम के लिए किलनी, अठगोरिया (tick) पर नियंत्रण रखना आवश्यक है।

2. कौकसिडियोसिस (Coccidiosis)

काकसिडिया, एक कोशिय जन्तु है जो घास पर, पानी के जमाव वाली जगह के घास, खर पतवार पर पाया जाता है। पशुओं या मनुष्यों के शरीर में प्रवेश करने के पश्चात् यह परवीजी के रूप में रहता है। पशु के आँत में प्रवेश कर, वहाँ सूजन (enteritis) पैदा करता है जिससे

मवेशी को पतला पखाना (DIARRHOEA) या खूनी दस्त (dysentry) होने लगता है। इसकी अनेक प्रजातियां होती हैं जिनमें इमेरिया जुरनी और इमेरिया बोविस गाय और भैंसों में बीमारी पैदा करते हैं।

आक्रांत पशु के पाखाना के साथ इस परजीवी के अण्डे बाहर आते हैं। बाहर आने पर अण्डों के ऊपर एक ऐसी झिल्ली बन जाती है जिससे ये बाहरी वातावरण के सर्दी–गर्मी को बर्दास्त कर सकते हैं और दो वर्षों तक जीवित रह सकते हैं। कम जगह में ज्यादा पशुओं को बांधने से आक्रांत पशु का पाखाना दूसरे पशु के शरीर पर पड़ता है जिससे स्वस्थ पशु के शरीर का केश संक्रमित हो जाता है। आक्रांत पशु को चारागाह में पाखाना करने से वहां का घास भी संक्रमित हो जाता है। जब स्वस्थ पशु संक्रमित घास को खाता है या संक्रमित पशु को चाटता है तब यह परजीवी उनके पाचन संस्थान में प्रवेश कर आँत में चला जाता है।

रोग के लक्षण : स्वस्थ पशु में इस परजीवी के प्रवेश करने के 16–30 दिनों में लक्षण प्रकट होता है। अक्सर पशु का शारीरिक तापमान सामान्य या सामान्य से कम रहता है। किसी–किसी पशु का शारीरिक तापमान सामान्य से ज्यादा हो जाता है। पहला लक्षण जो आक्रांत पशु में परिलक्षित होता है, वह है अचानक पतला पाखाना होना। पाखाना के साथ श्वेत श्लेष्मा (White mucous) या खून के छीटें रहते हैं। इससे पशु काफी कमजोर हो जाते हैं, उनमें खून की कमी हो जाती है। पाखाना में बदबू रहता है। पशु खाना छोड़ देता है। यदि समुचित चिकित्सा नहीं हुई तो एक सप्ताह में पशु की मृत्यु हो जाती है। किसी–किसी पशु में यह बीमारी गुप्तरूप में मौजूद रहता है। इस हालत में आक्रांत पशु का विकास अवरूद्ध हो जाता है। उनकी उत्पादन क्षमता कम हो जाती है। उनको कभी–कभी पतला पाखाना होने लगता है। पाखाना में खून का थक्का रहता है। जब मैं उच्च विद्यालय का विद्यार्थी था, उस समय मेरी एक गाय थी, प्रत्येक 2–3 दिन के अन्तराल पर उसके गोबर में गोल–गोल खून के थक्के दिखाई देते थे। अब मेरी समझ में आती है कि वह गाय क्रॉनिक कौकसिडियोसिस से पीडित थी।

उपचार एवं रोकथाम : (1) जब किसी मवेशी को पतला पाखाना होने लगे, शीघ्रातिशीघ्र उसे दस्त रोधक दवा देना शुरू कर देना चाहिए। अनेक व्यवसायिक नाम से बाजार में दस्तरोधक दवाईयाँ मिलती हैं,

जैसे– मार्कोजिल, मार्कोप्रीम, फेजोल इत्यादि (पशु के शारीरिक वजन के हिसाब से इनकी मात्रा निर्धारित करना चाहिए। (2) एलेक्ट्रल पाउडर/ ओ.आर.एस. का घोल पशु को पिलाते रहे। (3) मवेशी को साफ और सुखे स्थान पर बाँधे। (4) छोटे बछड़ों को वयस्क पशु से अलग बाँधे। (5) रोगग्रस्त पशु का पाखाना गोशाला से दूर गडढ़ा खोदकर गाड़ देना चाहिए। (6) पशुशाला में कीटनाशक दवा का छिड़काव नियमित करते रहना चाहिए।

3 सर्रा (ट्रिपनोयोमियासिस) Tripnosomiasis

सर्रा गाय, भैंस, घोड़ा, हाथी, ऊँट, गधों का एक अत्यधिक सामान्य रूप से होने वाली भयंकर बीमारी हैं। यह ट्रिपेनोसोमा इवेन्साई प्रजाति के प्रोटोजोआ परजीवी द्वारा उत्पन्न होता है। यह परजीवी अठैल द्वारा रोग ग्रसित पशु से स्वस्थ पशु में फैलता है। स्वस्थ पशु में प्रवेश कर लाल रक्त कण को तोड़ता है।

लक्षण : सर्रा का लक्षण दो रूपों में परिलक्षित होता है (1) तीक्ष्ण (Acute) (2) मन्द, चिरकालिक (Chronic) (1) जब इस रोग का आक्रमण तीक्ष्ण (Acute) रूप में होता है, तब पशु को अचानक काफी बुखार (105–107 फारनेहाईट) हो जाता। पशु हाँफने लगता है, उसके आँख पर लालिमा छा जाती है। कभी–कभी पशु सामने के दीवार या खम्भा में सिर टकराता है। आँख की रोशनी खत्म हो जाती है। (2) जब यह रोग मन्द, चिरकालिक रूप में होता है तब आक्रांत पशु कभी बिल्कुल ठीक लगता है, कभी सुस्त हो जाता है। खाना एवं पागुर करना छोड़ देता है। वह अपना थुथना जमीन पर टिकाकर बैठा रहता है। इस रोग की एक अहम पहचान यह है कि पशु बैठते समय अपना आगे का दोनों पैर सामान्य रूप से मोड़ता है लेकिन पीछे वाला पैर नहीं मोड़ पाता, धब से गिर जाता है। दिन पर दिन पशु कमजोर होता जाता है। उसमें खून की कमी हो जाती है। खास कर इस बीमारी में कमर कमजोर हो जाता है। पुराना हो जाने पर रोगी के आँख से पानी गिरता है।

दृष्टांत : एक बार मुझे इस बीमारी से पीड़ित बैल की चिकित्सा करने के लिए बुलाया गया। वह बैल आगे का एक पैर उठाकर हिलाता रहता था, फिर उस पैर को जमीन पर रख देता और आगे का दूसरा पैर उठाकर

हिलाने लगता। दिनो दिन वह कमजोर होता जा रहा था। कभी–कभी थोड़ा खाता अन्यथा खाना छोड़ देता था। बैठते समय आगे का दोनों पैर ठीक से मोड़ता लेकिन पीछे से बिना पैर मोड़े गिर जाता। इसी लक्षण से मुझे पता चला कि यह बैल सर्रा से पीड़ित है। तब मैंने टार–टार इमेटिक (Tartar emetic) का 2 प्रतिशत घोल बनाकर 20 सीसी कान के नश में चढ़ा दिया और एक ही खुराक में बैल ठीक हो गया।

चिकित्सा एवं रोकथाम :-

(1) टारटार इमेटिक का 1–2 प्रतिशत घोल बनाकर 20 सीसी ग्लुकोज सलाइन में मिलाकर शिरा में दें। इस दवा का दूसरा सूई एक सप्ताह के अंतराल पर देना चाहिए।

(2) एन्ट्रीसाइड प्रोसाल्ट 2–3 ग्राम 15 मि.ली. श्रावित जल या नार्मल सलाइन में मिलाकर चमड़ा के नीचे सूई से दें।

(3) बेरेनिल 0.8 ग्राम से 1.6 ग्राम प्रति 100 किलो शारीरिक भार की दर से मांस में सुई दें।

(4) रक्त वर्द्धक दवा लगातार कुछ दिनों तक खिलाना चाहिए।

(5) पशुओं से अठैल निकालकर जला देना चाहिए।

4 **थेलेरिएसिस (Thaileriasis)** यों तो रक्त में अवस्थित आर.बी.सी. (R.B.C) के अनेक परजीवी हैं, उनमें थेलेरिडे परिवार के परजीवी गो वंश के पशुओं में दीर्घकालिक बुखार पैदा करते हैं। इस परिवार में छः जाति के परजीवी पाये जाते हैं जिनमें थेलेरिया पार्भा (Theileria Parva) और थेलेरिया एनूलाटा (Theileria Annulata) गो वंश के पशुओं को प्रभावित करते हैं। थेलेरिया पार्भा भारत में नहीं पाया जाता है, सिर्फ थेलेरिया एनूलाटा ही यहाँ गो वंश के पशुओं में पाये जाते हैं। यह परजीवी आक्रांत पशु से स्वस्थ पशु में अठैल (Thick) द्वारा फैलता है।

लक्षण :- इस रोग में पशु को बुखार हो जाता है। पशु के आगे के पुट्ठा की लसिका ग्रंथी (Prescapular lymph gland) में सूजन हो जाता है। आक्रांत पशु सामान्य ढंग से खाता–पीता है। लेकिन लगातार बुखार रहने से पशु कमजोर होता जाता है। एन्टीबायोटिक से बुखार जल्द नहीं जाता है। कुछ दिनों के बाद पशु को पतला पाखाना होने लगता है। धीरे–धीरे खून की कमी हो जाती है। यदि समय पर उचित ईलाज

नहीं हुआ तो पशु की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा :- दीर्घ काल तक प्रभावी टेट्रा साइक्लिन (Long Acting tetracycline) 10 मि0 ग्राम प्रति किलो शरीर भार की दर से खून की नस में लगातार एक सप्ताह तक सूई लगावें।

- यदि बुटालेक्स नामक दवा उपलब्ध हो तो इसकी सिर्फ एक सूई लगवावें।
- रक्त बढ़ने की दवा जैसे फेरम सल्फेट, लिभर एक्सट्रेक्ट, बी0 कम्पलेस आदि दवाईयाँ लगातार कुछ दिनों तक देना चाहिए ताकि जल्द ही हिमोग्लोबिन बढ़ जाये।

रोग की रोकथाम :- मवेशी को रोज धोना चाहिए। उसके शरीर पर चिपके अठैल (Thick) परजीवी को चुनकर जला देना चाहिए। अठैल को मारने के लिए ब्यूटाक्स या कुमाटोल नामक दवा–5 उस एक लीटर पानी में घोलकर मवेशी के शरीर पर लगाना चाहिए। एक घंटा के बाद मवेशी को पुनः धो देना चाहिए ताकि इसका विषैला असर उसपर न पड़े।

5 एनाप्लाजमोसिस (Anaplasmosis)

थेलेरियासिस की भांति एनाप्लाजमोसिस भी अठैल (Thick) द्वारा फैलने वाला एक दूसरा रक्त परजीवी, (एनाप्लाजमा) के कारण होता है। गो–जाति के मवेशियों के अलावे यह भेंड़ और बकरी में भी पाया गया है। थेरियासिस की अपेक्षा यह मन्दगति से फैलता है।

लक्षण :- इस बीमारी के कारण मवेशी को हमेशा बुखार रहता है। बुखार की अवस्था में भी पशु खाता–पीता है और पागुर करता है। लेकिन दिन पर दिन वह दुबला–पतला और रक्तहीन होता जाता है। इसमें भी आगे के पुट्ठा की लसिका ग्रंथी (Prescapular lymph gland) में सूजन हो जाता है। साधारण एन्टीवायोटिक से बुखार नहीं उतरता। गर्भवती मादा को गर्भपात हो जाता है और दुधारू मवेशी का दूध उत्पादन क्षमता कम हो जाती है। कमजोर होते–होते पशु की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्साः दीर्घकाल तक प्रभावी टेट्रासाइकिलन (Long Acting tetracycline) नामक दवा 6–10 मि0 ग्राम/कि0 ग्राम भार की दर से लगातार मॉंस में

सूई द्वारा देने से रोग नियंत्रण में आ जाता है। लेकिन रक्त में परजीवी समाप्त नहीं होता।

10–30 मि0 ग्राम टेट्रा साइक्लिन प्रति कि0 ग्राम शारीरिक भार की दर से नस में लगातार 10 दिनों तक सुई लगाने से रक्त में उपस्थित परजीवी खत्म हो जाते हैं।

इस बीमारी की चिकित्सा एवं रोकथाम थेलेरियासिस की तरह ही होती है।

आंत परजीवी द्वारा उत्पन्न बीमारियाँ:

1. लीभर फ्लूक (Liver fluke)

जैसा नाम से बोध होता है, यह बीमारी लीभर में रहने वाले परजीवी कृमि के द्वारा उत्पन्न किया जाता है। इस कृमि को फैसीओला हिपाटिका (Fasciola hepatica) कहते हैं। यह ज्यादातर गाय और भेंड़ी को आक्रान्त करता है। पानी जमाव वाले इलाकों में ही यह बीमारी ज्यादा होती है। आक्रान्त पशु के पित्त की नली में यह पूर्ण व्यस्क होता है और वहीं अण्डा देता है। अण्डे वहाँ से नीचे उतर कर आँत में आ जाते हैं और पाखाना के साथ बाहर निकल जाते हैं। फिर घोंघा में इनका विकास होता है। विकसित परजीवी घोंघा से बाहर निकलकर घास पर चिपके रहते हैं। इनके चारो तरफ एक झिल्ली बन जाती है जिससे बाहरी वातावरण का उनपर असर नहीं पड़ता है। झिल्ली से घिरे हुए परजीवी को सिस्ट (ब्लेज) कहते हैं। जब उस घास को स्वस्थ पशु खाते है तो ये सिस्ट पशु के पेट में चले जाते हैं। स्वस्थ्य पशु के आँत में जाने पर सिस्ट फट जाते हैं और परजीवी बाहर आ जाते हैं। बाहर आकर पहले ये आँत के दीवाल पर आक्रमण करते हैं और बाद में पित नली से लीभर में चले जाते हैं। लीभर में जाकर ये स्थिर हो जाते है और वहीं अण्डा देते रहते हैं।

बाहरी लक्षण : यह परजीवी कृमि पित्त नली को मोटा करके पित्त के प्रवाह में रूकावट पैदा करते हैं जिससे लीभर के अनेक प्रकार की बीमारियां पैदा हो जाती है। आक्रान्त पशु की भूख मन्द हो जाती है।

उसे कब्ज रहने लगता है। शरीर में रक्त की कमी हो जाती है जिससे उसकी श्लेस्मिक झिल्ली पीला हो जाता है। कुछ दिनों के बाद पतला दस्त होना शुरू हो जाता है। जबडे के नीचे सूजन हो जाती है जिसे 'बॉटल जा' बीमारी भी कहते हैं। यदि चिकित्सा नहीं हुई तो कमजोर होते–होते पशु मर जाता है।

चिकित्साः

1. नीलजाम या जेनिल नामक दवा शारीरिक वजन के अनुसार पिलाना चाहिए।
2. लीभर टॉनिक तब तक पिलाना चाहिए जब तक पशु सामान्य स्थिति में न आ जाय या लीभर एक्सट्रैक को सुईया जैसे बेलामिल, लीभोजन 10 एमएल माँस में 6 दिन तक दें।
3. आक्रांत पशु को कैलिसयम साल्ट जैसे माइफेक्स, थाईकल, कैल्सियम बोरोग्लूकोनेट को नश में 450 एमएल एक बार में चढ़ाना चाहिए। आवश्यकता अनुसार इसे दुहराया जा सकता है।

रोकथाम :

1. पशुओं को कभी भी दलदली चारागाह में नहीं छोड़ना चाहिए।
2. चारागाहों में कहीं भी पानी का जमाव नहीं होना चाहिए।
3. पानी के बहाव वाली जगह पर उगे घास को पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए। बल्कि उसे काटकर जला देना चाहिए।
4. घोंघो को चारागाह से चुनकर नष्ट कर देना चाहिए। यदि चारागाह में घोंघे ज्यादा संख्या में हो तो तूतिया का 0.5 प्रतिशत घोल का छिड़काव करने से घोंघे मर जाते हैं।
5. ऐसे जगहों पर जहाँ लीभर फ्लूक की बीमारियां ज्यादा होती हो वहाँ साल में कम से कम एक बार कार्बन टेटराक्लोराईड गाय और भैंस को क्रमशः 3 एमएल और 8 एमएल तरल पेराफिन के साथ मिलाकर पिलाना चाहिए।

2. एम्फीसटो मियेसिस या आमाशय फ्लूक :

यह बीमारी एम्फीसटोम प्रजाति के कृमि द्वारा उत्पन्न किया जाता है।

पर्ण के आकार का यह एक परजीवी कृमि है जो पागुर करने वाले पशुओं के आमाशय में पाया जाता है। लीभर फ्लूक की तरह इसके अण्डों की बढ़ोत्तरी घोंघा में होता है। घोंघा से निकलकर ये घास के पत्तों पर चिपके रहते हैं और जब पशु इन घासों को खाते हैं तो यह उनके आँत में चले जाते हैं। जब ये प्रौढ़ होते हैं तो आँत का पहला भाग (डियोडेनम) से उपर की ओर बढ़कर आमाशय के पहला हिस्सा (रूमेन) तक चले जाते हैं और वहाँ चिपके रहते हैं। इसमें आगे और पीछे दो चूसक होते हैं। प्रौढ़ कृमि कोई लक्षण उत्पन्न नहीं करता लेकिन अव्यस्क कृमि पशुओं में पत्तला दस्त उत्पन्न करता है।

लक्षण :- ये पर्णकृमि पशु के आँतों में सूजन पैदा करते हैं जिससे पशु की पाचन शक्ति समाप्त हो जाती है जिससे पशु को पत्तले एवं बदबुदार दस्त होने लगता है। कभी दस्त के साथ खून भी आता है। पशु के जबड़ा के नीचे सूजन हो जाता है। पशु की भूख समाप्त हो जाती है। पशु दिन पर दिन कमजोर होता जाता है और सही समय पर इलाज नहीं होने से उसकी मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा: 1. निक्लोसामाईड 10 मि0 ग्राम प्रति किलो वनज की दर से 2. टोल्जान एफ 1 फायल बड़े पशु को तथा 1/2 फाईल छोटे पशु को दें। 3. लीभर टानिक सूई एवं खाने की दवा दें।

रोकथाम: लीभर फ्लूक बीमारी में वर्णित उपायो से घोंघो को खत्म कर जानवर को बचाया जा सकता है।

दैहिक (Systemic) बीमारियाँ

1. Milk Fever (प्रसूत ज्वर)

जैसा कि नाम से बोध होता है, इस बीमारी में ज्वर रहेगा। लेकिन वास्तव में इस बीमारी में ज्वर नहीं रहता। शारीरिक तापमान सामान्य रहता है या सामान्य से भी कम रहता है। अधिकतर यह बीमारी दुधारू पशु को बच्चा देने के ठीक बाद या पहले होता है लेकिन दूध देने की अवधि में कमी भी हो सकता है। रक्त में कैल्सियम की कमी हो जाने से यह बीमारी होती है। कैल्सियम एक ऐसा तत्व है जो ज्यादा मात्रा में खाने से हड्यिों में जमा हो जाता है और जब इसकी आवश्यकता होती है तब हड्डी से निकलकर रक्त में आ जाता है। बच्चा पैदा करने के बाद जब

थन में दूध आता है तब दूध के कैल्सियम की आपूर्ति के लिए अत्यधिक मात्रा में रक्त कैल्सियम दूध में आ जाता है। यदि खाना से प्राप्त कैल्सियम की मात्रा कम रही या हड्डी से कैल्सियम के परिचालन की क्रिया में कोई गड़बड़ी हो गई तो रक्त कैल्सियम का स्तर काफी कम हो जाता है। परिणाम स्वरूप प्रसूत ज्वर उत्पन्न होता है। प्रसूत ज्वर में अक्सर कैल्सियम के साथ–साथ मैगनिशियम और पोटासियम की कमी हो जाती है।

लक्षण :- प्रसूत ज्वर के प्रारंभिक अवस्था में पशु सुस्त हो जाता है। वह चलना नहीं चाहता, खाना छोड़ देता है। सिर हिलाता है। दाँत कटकटाता है। जीभ बाहर करके खड़ा रहता है। शारीरिक तापमान सामान्य या सामान्य से कम ही रहता है। पीछे के दोनों पैर कड़ा हो जाते हैं। अगर नीचे की ओर पशु को चलाया जाय तो वह गिर जाता है।

इसके दूसरी अवस्था में पशु अपने सीने की हड्डी के बल सिर को पेट पर रखकर अर्ध चेतना की अवस्था में इस प्रकार बैठ जाती है मानो उँघ रही हो। थुथुना सुखा रहता है। शारीरिक तापमान सामान्य या सामान्य से कम रहता है।

प्रसूत ज्वर की तीसरी अवस्था में पशु लगभग बेहोशी की हालत में लेट जाता है। पैरो को पटकने लगता है। यदि चिकित्सा नहीं हुई तो धीरे–धीरे मृत्यु की ओर अग्रसर होता है।

उपचार :- इसके इलाज के लिए कैल्सियम का घोल शिरा में चढ़ाना चाहिए। कैल्सियम का घोल विभिन्न नामो से जैसे कैलबोरोल, मिफेक्स, कैल्सियम मैगनेसियम बोरोग्यूकोनेट इत्यादि बाजार में उपलब्ध है।

इनमें किसी एक का 500 से 1000 एम.एल. पशु के शिरा में चढ़ाना चाहिए। साथ में एभिल की भी सूईयाँ लगाना चाहिए। मुँह द्वारा खिलाने वाला कैल्सियम का घोल जैसे कैल्जोल, केल्डीसब्रा भी पशु को निर्धारित मात्रा में पिलाना चाहिए।

रोकथाम:-

1) बच्चा देने के बाद गाय का पहला दूध (फेनूस / खिरसा) पूरा–पूरा नहीं दुहना चाहिए।

(2) गाभिन गाय को बच्चा देने के एक से डेढ़ महिना पहले से ही कैल्सियम का अतिरिक्त खुराक देना बन्द कर देना चाहिए।

(3) गाभिन गाय को कैल्सियम युक्त दलहनी घास खिलाना चाहिए।

2. अफरा या टिम्पेनी (Tympany) या ब्लोट (Bloat)

पागुर करने वाले पशुओं के पेट के चार प्रकोष्ठ होते हैं, रूमेन, रेटेकुलम, ओमेजन और अबोमेजन। इनमें प्रथम दो प्रकोष्ठों में अत्यधिक गैस का उत्पादन एवं जमाव की स्थिति को अफरा कहा जाता है। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैंः (1) ज्यादा मात्रा में दलहनीय चारा खिलाना (2) अत्यधिक मात्रा में अनाज खिलाना (3) सामान्य शारीरिक क्रिया में गड़बड़ी के कारण निकले हुए गैस का ढ़कार से बाहर नहीं निकलना

लक्षण :- पशु के पेट का बायाँ भाग फूला रहता है। उसपर हाथ से ठोकने पर ढोल की तरह आवाज आती है। यदि शीघ्र चिकित्सा नहीं की गई तो गैस आगे बढ़कर फेफड़ो और हृदय पर दवाब डालता है। फलस्वरूप पशु को सांस लेने में तकलीफ होती है और उसकी मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा :- टिम्पोल नामक दवा पिलाना चाहिए। 100 ग्राम बड़े पशु को तथा 15–20 ग्राम छोटे पशु (भेंड़, बकरी) (3) झागवाले अफरा में 30 एमएल तिसी का तेल और 30 एम0एल तारपीन का तेल मिलाकर आक्रान्त पशु को पीलाना चाहिए। (4) इन दवाईयो से फायदा नहीं हो तो ट्रोकार और केनुला या 24 न0 वाला सूई से पेट के बायाँ भाग में छेदकर गैस निकालना चाहिए।

3. झाड़ का न निकलना (Retaintion of Plasanta): बच्चा पैदा हो जाने के बाद 4 से 6 घंटों में झाड़/जेर (Phasanta) अपने आप बाहर निकल जाता है। परन्तु कभी–कभी ऐसा होता है कि 12 घंटों तक भी बाहर नहीं निकलता। झाड़ नहीं निकलने से बच्चेदानी में सूजन हो जाता है। पशु को बुखार हो जाता है। भूख में कमी हो जाती है। दूध उत्पादन कम हो जाता है। यदि झाड़ नहीं निकले तो निम्न प्रकार चिकित्सा करनी चाहिए।

(1) रिप्लेन्टा 50 ग्राम, प्रत्येक 4 घंटे पर गुड़ के साथ तब तक खिलावे जब तक झाड़ बाहर न आ जाए।

(2) अरगोट पाउडर – 30 ग्राम
मैगनेशियम सल्फेट – 200 ग्राम
जींजर चूर्ण – 30 ग्राम
और पुराना गुड़ – 500 ग्राम
सभी को मिलाकर खिलावे।

यदि इससे भी झाड़ न निकले तो हाथ से किसी कुशल डाक्टर से निकलवाने और निकालने के बाद बच्चादानी में स्टेकलीन बोलस या ओरोप्रिय बोलस या फ्यूरिया बोलस 4 दिनों तक अवश्य डलवाएँ।

❑

परिशिष्ट – 1

विभिन्न पालतू पशुओं की औसत आयु

पालतु पशु	औसत आयु (वर्ष में)
गाय	22
भैंस	23
घोड़ा / घोड़ी	27
गधा	33
खच्चर	33
ऊँट	45
भेंड़	10
बकरी	12
सुअर	14
हाथी	60
कुता	10
बिल्ली	12
खरगोश	3

परिशिष्ट – 2

विभिन्न स्वस्थ पालतू पशुओं के सामान्य नाड़ी गति, सांस एवं तापक्रम

पशु	नाड़ी गति / मिनट	सांस गति / मिनट	तापक्रम फारनहाईट	सेल्सीअस
गाय एवं भैंस	50—60	12—16	101—102	38.3—38.9
घोड़ा	38—43	8—12	100—101	37.8—38.3
भेंड़ एवं बकरी	75—80	20—30	102—103	38.9—39.4
सुअर	70—80	20—30	102—103	38.9—39.4
कुता	80—90	15—23	101—102	38.3—38.9
बिल्ली	150			

लेखक परिचय

डा. चन्द्रशेखर प्रसाद सिंह ने सन् 1962 में बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना से बी.भी.सी. एण्ड ए.एच. की परीक्षा पास की और विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया। पशुधन अनुसंधान संस्थान, पटना में जून 1962 में इन्होंने सहायक शोध पदाधिकारी के पद पर अपना योगदान दिया। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद से इन्हें छात्रवृति मिली और इन्होंने 1967 में बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय से ही स्नातकोतर की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् जर्मनी से डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त कर इन्होंने रांची पशु चिकित्सा महाविद्यालय में सहायक प्राध्यापक, पशु प्रजनन के पद पर मार्च 1975 में योगदान दिया। सन् 1977 में पशु प्रजनन विभाग में ही सह प्राध्यापक के पद पर इनकी प्रोन्नति हुई। इस पद पर रहते हुए इन्होंने बकरी, भैंस, गौ एवं सूकर पशुओं में नस्ल सुधार पर लगभग 300 शोध पत्र प्रकाशित किए। सितम्बर 1985 में इनकी प्रोन्नति विश्वविद्यालय प्राध्यापक के पद पर हुई। इस पद पर रहते हुए इन्होंने विश्वविद्यालय में कई महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों जैसे कुलसचिव एवं निदेशक प्रशासन के पद पर कार्य किया। फरवरी 2002 में ये अधिष्ठाता पशुपालन संकाय, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय के पद से सेवा निवृत हुए। सेवा निवृति के बाद ये इथियोपिया (Ethiopia) के Mekelle University में प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष के पद पर 2009 तक कार्यरत रहे।

154/19 ● kailashpaper.org ● 92631 80313 / 14 / 15